अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदानयज्ञमूलक ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक

सौर वशाख ६, शके १८७९ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति २ आना : १३ नये पैसे

वर्ष-३, अंक-३० 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, २६ अप्रैल, '५७

नैष्ठिक जिला-सेवक कैसा हो ?

जिले की साल भर की जिम्मेदारी तो एक तात्कालिक बात है। उसमें कोई विशेष सत्व नहीं। जब तक जिले में भूमिक्रांति नहीं होती, तब तक जिसे बेचैनी महसूस होगी, वही हमारा नैष्ठिक जिला-सेवक है। 'एकश्चंद्रस्तमोहन्ति' इस तरह से तो हमें करना नहीं, एक-एक जिले में सैकड़ों सेवक होने चाहिए। उनमें से कुछ साल भर समय देने वाले हों।

हमारी ओर से जो जिला-सेवक रहेगा, वह इन अनेक सेवकों में से एक होगा। जिसकी लोकनीति की निष्ठा दोलायमान होगी, ऐसे लोगों से यह काम आखिर तक नहीं निभेगा। भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्षों के लोग भी भूदान का कार्य बखुशी करें। सबका सहकार्य हमें चाहिए। लेकिन नैष्ठिक जिला-सेवक की जो पंचविध निष्ठा हमने घोषित की, उसमें ढुलमुलपना उचित नहीं है।

(शांताबहन नारुळकर के नाम लिखे पत्र से।) —विनोबा

केरल को भूस्वामित्व मिटाने का आवाहन !

(विनोबा)

आज एक प्रेम-राज्य से दूसरे प्रेम-राज्य में प्रवेश कर रहे हैं। जिस प्रदेश को हमने छोड़ा, वहाँ माणिक्यवाचकर, नम्माळवार और रामानुज का राज चलता है। अब हम जिस राज्य में प्रवेश कर रहे हैं, वहाँ के राजा हैं—ईसा मसीह और शंकराचार्य। हम इसमें कोई फरक नहीं देख रहे हैं। ईसा मसीह ने सिखाया कि 'पड़ोसी पर वैसा ही प्यार करो, जैसा हम अपने पर करते हैं।' इसलिए जब हमने सुना कि यहाँ खिस्ती बिशप लोगों ने इस कार्य को माना है, तो हमको आश्चर्य नहीं हुआ। अगर उसको नहीं मानते, तब वह आश्चर्य की बात होती, क्योंकि इस कार्य को नहीं मानते याने ईसा मसीह को नहीं मानते।

शंकराचार्य ने एक कदम आगे बढ़कर अभेद की बात बतायी। जहाँ 'अभेद' शब्द आया, वहाँ सब प्रकार की मालकियत टूट जाती है। शंकराचार्य ने तो यह भी स्पष्ट लिख रखा है—"कस्यस्विद्धनम्"—धन किसका है ? मालकियत किसकी है ? किसीकी भी नहीं, ऐसा स्पष्ट लिखा है। हम समझते हैं कि मालकियत मिटाने का इससे स्वच्छ, स्पष्ट आदेश शायद ही कहीं मिल सकता है। ऐसे महान् पुरुष के राज्य में हम आज प्रवेश कर रहे हैं।

आज १८ अप्रैल है। बराबर छह साल हुए यह आंदोलन शुरू हुआ था। आप सब लोग जानते हैं कि यहाँ कालड़ी ग्राम में सर्वोदय-संमेलन होने जा रहा है। आप और हम सब मिल कर कोशिश करें और सर्वोदय-सम्मेलन में जाहिर कर सकते हैं कि केरल प्रदेश में सबने जमीन की मालकियत प्रेम से छोड़ दी है।

इस आंदोलन के आरंभ में थोड़ा-थोड़ा दान माँगते थे। धीरे-धीरे छठे हिस्से की माँग की। बाद में यह माँग की कि कुल भूमिहीनों को जमीन मिलनी चाहिए। फिर हमने यह कहा कि जैसे हवा सबके लिए है, पानी सबके लिए है, उसी तरह जमीन सबके लिए है। उसका मालिक कोई नहीं हो सकता और इसी मूलभूत सिद्धांत पर हमने ग्रामदान-आंदोलन शुरू किया। यह ग्रामदान हिंदुस्तान के बहुत सारे प्रदेशों में शुरू हुआ है। तमिलनाड़ में हमने खूब जोर लगाया। हिंदुस्तान के करीब २२०० ग्रामों के लोगों ने अपनी व्यक्तिगत मालकियत छोड़ दी है और सामूहिक मालकियत मानी है।

यह एक नया राज है, इसलिए यहाँ कोई नयी घटना बननी चाहिए, तब इस नये राज्य की रुचि प्रगट होगी। इस राज्य में आप सबके प्रयत्न से एक बड़ा कार्य बन सकता है। इस प्रदेश में कितने दिन बिताने चाहिए, इसका अंदाजा पहले हमने अपने मन में रखा था, पर यहाँ प्रवेश करने पर वह मर्यादा नहीं रखी है। जितने दिन चाहेंगे, उतने दिन आप हमको रोक सकते हैं ! परंतु इतना ही करना होगा कि आप सबको अपनी पूरी ताकत इस कार्य में लगानी होगी।

हिंदुस्तान में अनेक राजनैतिक पक्ष हैं। देश बड़ा है, तो यहाँ के प्रश्न भी बड़े हैं। इसलिए अनेक प्रकार के आदर्श यहाँ खड़े किये जाते हैं। परंतु सब आदर्श वाले यह मानने के लिए राजी हैं कि जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए। मैं नहीं समझता कि किसी राजनैतिक पक्ष का इसमें मतभेद रहा हो। यह बात दूसरी है कि मोह के कारण एकदम आसक्ति नहीं छूटती। पर विचार तो सबको मान्य है। अगर सबको यह मान्य है, तो हम सब इकट्ठा होकर केरल का सवाल हल करके आगे क्यों न बढ़ें ? हम चाहते हैं कि आज हम सब संकल्प करें कि सब मिल कर हम इस प्रश्न को हल करेंगे। यह साहस अगर हम कर सकते हैं, तो भारत के ही नहीं, कुल दुनिया के लिए एक मिसाल हो सकती है। इसमें आप जो चाहें, वह मदद हम आपको दे सकते हैं।

भूमिहीनों को भूमि-संपत्ति मिले, यह अपेक्षा तो है, पर इतनी ही अपेक्षा नहीं। गरीबों को भी दूसरों को देना है, नहीं तो उनकी कोई इज्जत नहीं रहेगी। धर्म-प्रतिष्ठा तभी रहेगी, जब वे कुछ-न-कुछ देने वाले होंगे। ग्रामदान याने जिसके पास जमीन नहीं, उसको जमीन दें—बस इतना ही ? तब तो ग्रामदान हुआ ही नहीं। जमीन वाले जमीन दें, संपत्ति वाले संपत्ति दें, बुद्धि वाले बुद्धि दें। किसीके पास ये कुछ भी नहीं, बीमार पड़ा है, तो श्रम भी नहीं दे सकता। वह बीमार है। बीमारी का उसे अनुभव है। उसके पास जाने वाले शख्स को वह प्रेम की नजर से देखे। अपना प्रेम गाँव को दे, और कुछ नहीं। प्रेम है, तो वह गाँव को मिलना चाहिए। इस तरह सबका सब गाँव को मिल जाय तब ग्रामदान होगा। मजदूर का लड़का भी समझेगा कि हम भी देते हैं। पिताजी गाँव को अपना श्रम देते हैं, बदले में भूमि पाते हैं। भूमिवाला भूमि देता है, तो बदले में श्रम पाता है। गाँव को दिया इसलिए पाया। दोनों ने ग्राम को दिया, दोनों ने पाया। इस तरह यह आंदोलन एक महान् विचार के आधार पर खड़ा है। सबकी उन्नति करनी है, हृदय व्यापक बनाना है, सहयोग सिखाना है। जिम्मेवारी की भावना सिखानी है और इसीके आधार पर हमको बल मिलता है।

(परसाला, त्रिवेंद्रम्, १८ अप्रैल)

आदर्श ग्राम की मेरी कल्पना

एक आदर्श भारतीय गाँव इस ढंग से बनाया जायगा कि उसमें पूरी सफाई रखी जा सके। उसमें ऐसी कुटियाँ होंगी, जिसमें काफी हवा और रोशनी रहेगी और जो पाँच मील के घेरे में प्राप्त होने वाली सामग्री से बनी होंगी। कुटिया में आँगन होंगे, जिनमें घरवाले घरू इस्तेमाल की सागभाजी उगा सकें और अपने मवेशी रख सकें। गाँव की गलियों और रास्ते में यथासंभव धूल नहीं होगी। उसमें गाँव की जरूरत के अनुसार कुएँ होंगे और उनसे सब पानी ले सकेंगे। वहाँ सबके लिए पूजास्थान होंगे, एक आम सभा-स्थान होगा, पशु चराने के लिए एक सम्मिलित चरागाह होगा, एक सहकारी दुग्धालय होगा, प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाएँ होंगी, जिनमें औद्योगिक शिक्षा मुख्य वस्तु होगी और झगड़े निपटाने के लिए पंचायतें होंगी। वह अपना अनाज, अपनी सागभाजी, अपने फल और अपनी खादी आप तैयार कर लेगा। मोटे रूप में आदर्श ग्राम की मेरी यह कल्पना है। —गांधीजी

('हरिजन', ९-१-३७)

www.vinoba.in

हमारी क्रान्ति के कुछ पहलू

(सिद्धराज ढड्ढा)

सत्तावन् का चिरप्रतीक्षित सम्मेलन आ गया। थोड़े दिन बाद ही देश भर के सर्वोदय-कार्यकर्ता और सेवक काळडी में इकट्ठे होंगे। हर साळ ही यह वार्षिक सम्मेलन हमारे लिए एक पर्व होता है। हमारी क्रान्ति के द्रष्टा और प्राण-स्वरूप विनोबा के सान्निध्य में पिछले काम की नाप-तौळ और आगे के लिए नयी प्रेरणा पाने का यह एक ऐसा अवसर बन गया है, जिसकी बाट हम सभी उत्सुकता से से देखते रहते हैं। पर सन् सत्तावन् को हमने हमारे आरोहण की एक विशिष्ट मंजिळ मानी है। इस दृष्टि से आगामी सम्मेळन का महत्त्व और भी अधिक है। ऐसे अवसर पर साथी कार्यकर्ताओं के चिन्तन के लिए कुछ मुद्दे पेश कर रहा हूँ।

यह तो हम सभी, और बाहरी लोग भी, अब समझ गये हैं कि इस आंदोळन का लक्ष्य इसका साध्य सिर्फ हिन्दुस्तान की भूमि-समस्या का हळ करना मात्र नहीं है। आपस के ही शोषण और उत्पीडन से त्रस्त मानव-जाति के अधिकांश जनसमूह की अन्तरात्मा से उठी हुई पुकार और आकांक्षा को इस आन्दोळन से एक रास्ता मिळा है। शोषण और शोषण से पैदा हुई हिंसा, गरीबी, विषमता और अन्याय को मिटा कर हम एक ऐसे नये समाज की रचना करना और देखना चाहते हैं, जिसमें सबका उदय हो, किसीका शोषण न हो, जिसमें मानव-मानव के बीच ऊँच-नीच का या व्यक्तिगत स्वार्थ से उत्पन्न भौतिक साधन-संपत्ति के संग्रह की भावना के कारण अमीर-गरीब का भेदभाव न हो। कोई भी समस्या अपने आप में कितनी ही बड़ी क्यों न मालूम होती हो, यह आन्दोळन इस या उस विशिष्ट समस्या को हळ करने का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि युग-परिवर्तन का एक अनुष्ठान है। पुराने मूल्यों की जगह नये मूल्यों की स्थापना द्वारा मानव-हृदय के विकास का यह एक महान् प्रयास है। संसार के इतिहास में एक नयी क्रान्ति की गंगोत्री इस आन्दोळन के जरिये प्रगट हुई है। इसीळिए देश-देशांतर के विचारक लोगों का ध्यान इसने खींचा है। आन्दोळन के इस लक्ष्य को याद रखना और दोहराना इसळिए जरूरी है कि हम तात्कालिक कार्यक्रम को ही साध्य मान लेने की गळती न करें। ऐसा होने से एक तरफ तो अधीरता से उत्पन्न दोष हमारे काम में आ सकते हैं और दूसरी ओर तुरन्त सफलता न मिळी, तो निराशा पैदा हो सकती है। सत्तावन् मुकाम नहीं है, रास्ते की एक मंजिळ है। यह आन्दोळन एक आरोहण है, जिसमें ऊँचे चढ़ते ही जाना है।

पर इतना ध्यान में ळे लेने के बाद हमारी सारी ताकत और हमारा चिन्तन-सर्वस्व तो तात्कालिक लक्ष्य पर ही केन्द्रित होना चाहिए। सत्तावन् में क्रान्त के पहळे चरण की पूर्ति के तौर पर जमीन पर से व्यक्तिगत मालकियत खतम होनी चाहिए। ग्रामदान ने इसका रास्ता खोळ दिया है। इसळिए हमारी सारी शक्ति, कार्यकुशळता और प्रचार ग्रामदान के कार्यक्रम पर केन्द्रित होना चाहिए। कई भूदान-कार्यकर्ता शंका करते हैं कि क्या फिर भूदान माँगने का काम हमें छोड़ देना चाहिए? पर भूदान तो ग्रामदान की तैयारी ही है, उसकी पहळी सीढ़ी है। यह ध्यान में रखें, तो दोनों में विरोध नहीं मालूम होगा, बल्कि भूदान के कार्यक्रम में सार्थकता नज़र आयगी।

भूदान, ग्रामदान आदि में मालकियत के विसर्जन की बात के साथ-साथ उसके विधेयात्मक पहलू, ग्रामराज की रचना पर अगर हम जोर देंगे, तो ग्रामदान का आकर्षण लोगों को ज्यादा होगा, और आगे का कार्यक्रम भी उनके सामने स्पष्ट होगा। ग्रामदान और ग्रामसंकल्प के जरिये ग्रामराज तक पहुँचना है, यह लोगों को साफ बतळाना होगा। केन्द्रित सत्ता, पक्षापक्ष के चंगुळ और 'कल्याण-योजनाओं' से सावधान रहने की बात भी लोगों को समझनी चाहिए। ग्रामराज की स्थापना का यह विधायक पहलू सामने रखे बिना ग्रामदान के काम में जान नहीं आयगी। हमेशा यह होता है कि जब साधन में तन्मयता हो जाती है, तो वही साध्य नज़र आने ळगता है और आगे की बात ओझळ हो जाती है। इसी तरह आज हमारे आन्दोळन में मालकियत-विसर्जन के पहलू पर ज्यादा जोर है। आज समाज में व्याप्त स्वार्थ-भावना को देखते हुए यह नावाजिब भी नहीं है, पर ग्रामदान-आन्दोळन पर जनता का ध्यान आकर्षित करना हो, तो हमें ग्रामराज की स्थापना का विधायक पहलू उनके सामने पूरी स्पष्टता से रखना होगा। भूदान या खादी-ग्रामोद्योग का कार्यक्रम सिर्फ राहत का काम नहीं है, बल्कि गरीबों के जीवन-मरण का सवाळ है। ग्राम-स्वावळंबन और ग्रामराज के बिना न सिर्फ आम जनता की गरीबी नहीं मिटेगी और उनका विकास नहीं होगा, बल्कि आज की केन्द्रित व्यवस्था अगर कायम रही, तो उनका शोषण उत्तरोत्तर बढेगा और स्थिति बदतर होती जायगी, यह लोगों को साफ-साफ बतळाना चाहिए।

हमारी क्रांति का एक दूसरा महत्त्व का पहलू है, जिसकी ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान अभी कम गया है। भूदान, संपत्तिदान, ग्रामदान वगैरह के जरिये उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत मालकियत के और संग्रह के विसर्जन की बात का तो काफी व्यापक प्रचार हुआ है, पर हमें यह ध्यान में रखना है कि सिर्फ मालकियत के या संग्रह के विसर्जन से काम पूरा नहीं होगा। इस प्रकार के विसर्जन की बात तो इससे पहळे दूसरे क्रान्तिकारियों ने भी कही है और सम्पन्न भी की है। रूस में व्यक्तिगत मालकियत खतम कर दी गयी, पर वहाँ शोषण या विषमता का अन्त नहीं हुआ, क्योंकि शोषण की जो जड़ है, उसको खतम करने की ओर या तो ध्यान नहीं दिया गया या जान-बूझ कर उसकी उपेक्षा की गयी। वर्गविहीन समाज बनाने के लिए उन्होंने पूँजीपति या जमींदार-वर्ग को तो खतम किया, पर किसानों और मजदूरों की हिमायत करने के बहाने व्यवस्थापक या शासक-वर्ग कायम रखा और उसीमें सब 'क्रांतिकारी', जिनमें से अधिकांश आखिरकार मध्यम-वर्ग (बूर्जुवा-वर्ग) के ही थे, दाखिळ हो गये। इस प्रकार पूंजीपति या जमींदार के रूप में तो शोषक-वर्ग नहीं रहा, पर व्यवस्थापक-वर्ग के रूप में वह और भी सुदृढ़ होकर लोगों की छाती पर बैठ गया। यहाँ भी हम 'सेवक' जब तक सेवक के रूप में अळग रहेंगे, तब तक शोषण का वास्तविक अन्त नहीं होगा। अभी तक हम अधिकांश 'सेवक' या क्रांति के कार्यकर्ता सेवा के नाम पर अनुत्पादक वर्ग में ही बने हुए हैं, और चाहे हमारे भूतकाळ की अपेक्षा या हमारी बाजार की कीमत को अपेक्षा हम सेवा का बदळा कम ळे रहे हैं। फिर भी इस तथ्य से हम इन्कार नहीं कर सकते कि हम दूसरे मध्यम-वर्ग वाळों की तरह ही आखिरकार श्रमिक-वर्ग की कमाई पर गुजर करते हैं। उत्पादक शरीरश्रम से हमारी आजीविका का सीधा संबंध अभी हमने नहीं जोड़ा है। यह सही है कि गांधीजी और विनोबा की प्रेरणा से हमने शरीरश्रम की प्रतिष्ठा स्वीकार की है, पर अभी तक हम जो भी नाममात्र का शरीरश्रम करते हैं, वह श्रम-प्रतिष्ठा का ही काम है, श्रम-द्वारा आजीविका चळाने का कार्यक्रम नहीं है। श्रम की 'प्रतिष्ठा' तो समाज में काफी हद तक दाखिळ हो चुकी है और उसके लिए अब ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं रही है। आज तो जिळे का कळेक्टर भी हाथ में कुदाळ ळेकर फोटो खिंचवाने में गौरव महसूस करता है, पर जैसे वह वेतन ळेकर 'श्रमदान' करता है, वैसे ही हम अधिकांश कार्यकर्ता भी निर्वाह की ओर से निश्चिंत होकर ही श्रम की प्रतिष्ठा के लिए थोड़ा-बहुत श्रम या श्रम का नाटक कर ळेते हैं! तो हमारी और साम्यवादियों की क्रान्ति में आखिर फर्क क्या है? हिंसा को तो आज वे भी व्यावहारिक नहीं मानते, इसळिए छोड़ते जा रहे हैं। हमारी विशेषता इसीमें है कि हमने वर्ग-निराकरण की राह अपनायी है, अर्थात् समाज में सभी लोग स्वेच्छा से उत्पादक या श्रमिक बन जायँ, कोई अनुत्पादक न रहे। व्यवस्था हो या सेवा, किसी भी बहाने, अगर बिना शरीरश्रम किये गुजर चळाने की राह खुळी रही, तो हमारी क्रांति भी अब तक की अन्य क्रांतियों की तरह असफळ होगी। समाज में कुछ उळटफेर हो जाय—मालकियत का विसर्जन भी हो जाय, पर गरीबों का निर्दळन बंद नहीं होगा, क्योंकि उन्हें हमारे जैसे सेवकों को खिळाने के लिए अतिरिक्त श्रम करना ही पड़ेगा। यह कहने की जरूरत नहीं कि अपवाद के तौर पर समाज हमेशा अपना उपकार करने वाळे वास्तविक सन्त पुरुषों के पोषण की जिम्मेवारी उठायेगा, पर यह 'सेवक-वर्ग' का सर्व-समान्य आदर्श नहीं हो सकता!

तो सत्तावन् में भूक्रांति के कार्यक्रम में हम जुट जायँ, पर वास्तविक श्रमिक जीवन अपनाये बिना क्रांति पूरी नहीं होगी, यह भी हमारे ध्यान में रहे, वरना हमारी क्रांति में से ही प्रतिक्रांति पैदा होने का खतरा है। इस तरह यह जरूरी है कि 'भूक्रांति' के तात्कालिक कार्यक्रम को करते हुए हम शोषणमुक्त सर्वोदय-समाज की स्थापना के हमारे लक्ष्य को न भूळें। उसी तरह यह भी जरूरी है कि सिर्फ मालकियत या संग्रह के विसर्जन से हमारा काम पूरा हुआ न मान कर हम श्रम-आधारित जीवन की ओर बढ़ने की अनिवार्य आवश्यकता का ध्यान रखें। क्रांति की सफळता में हमेशा यह बाधा रही है कि पढ़े-ळिखे मध्यमवर्ग के लोग बिना श्रम किये खाने को कोई न कोई तरकीब या बहाना हमेशा खोज ही ळेते हैं और इसीळिए गरीबी, विषमता और शोषण का कभी खात्मा नहीं होता। अगर हमें वर्ग-विहीन, शोषण-रहित समाज की स्थापना करनी है, तो हमें अपने आप को श्रमिक वर्ग में दाखिळ करना होगा और श्रम का फळ भी समाज के चरणों में अर्पण करके अपने उपयोग के लिए उसमें से जो मिळे, उसे प्रसाद समझ कर सन्तोष मानना होगा।

---

www.vinoba.in

ईश्वर का राज्य बाहर ही नहीं—भीतर भी हो

प्रश्न : जिस निर्दिष्ट लक्ष्य (समाज-रचना) के लिए आप अपना जीवन उत्सर्ग कर रहे हैं, उसमें और लगभग २००० वर्ष पूर्व द्वारा प्रतिपादित यीशु मसीह के "प्रभु के राज्य" में क्या अन्तर है ?

विनोबा : यीशु मसीह से पूर्व बुद्ध ने भी ठीक इसी प्रकार के समाज की कल्पना की थी, परन्तु अभी तक उसका मूर्त रूप नहीं दिखायी दिया। मनुष्य ऐसा विश्वास करता दिखायी देता है कि उसका अस्तित्व उसके भौतिक शरीर तक ही सीमित है। लेकिन भारतीय दर्शन (पर आधारित दर्शन) इस विचार का खण्डन करता है। उसका कथन है कि एक मनुष्य का जीवन दूसरे समस्त मानव में भी निहित है। ···मैं शान्ति एवं विनय के मार्ग द्वारा इस सत्य को लोगों तक पहुँचाने और उनका हृदय-परिवर्तन करने का प्रयास कर रहा हूँ। इस प्रकार लोगों को इस बात की अनुभूति होने लगेगी कि उनका जीवन मानव-मात्र की सेवा के लिए बनाया गया है। वास्तव में भोजन स्वाद के लिए नहीं, बल्कि दूसरे की सेवा में बराबर तत्पर इस मानव-जीवन रूपी मशीन को भली प्रकार चलते रहने के लिए होना चाहिए। उन्होंने कहा कि ईश्वर का राज्य केवल ईश्वर द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। ···मेरा ऐसा विश्वास है कि प्रभु की कृपा प्राप्त करने योग्य जनमानस तैयार करने के लिए उनका यह अभीष्ट मार्ग है।

प्रश्न : आपकी राय में क्रिश्चियन गिरजाघरों एवं भारत में स्थित क्रिश्चियनों की सबसे बड़ी कमजोरी क्या है ?

विनोबा : मैं आलोचना करना पसन्द नहीं करता, परन्तु मेरा ऐसा विचार है कि क्रिश्चियनों का पृथकत्व ही उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईसा महात्मा (साधु) थे और अपने ईश्वरीय उपदेश के लिए उन्हें अनेक यातनाएँ भुगतनी पड़ीं और अन्त में अपना प्राण भी गँवाना पड़ा। "मेरे घर में बहुत से रहने के स्थान हैं"—यीशु मसीह की इस उक्ति को ईसाई भाई भूल गये हैं।

दूसरे देशों में भी अनेक महात्मा हो गये हैं। जिस प्रकार भगवान् दुनिया की भिन्न-भिन्न जगहों में पानी बरसाता है, उसी प्रकार उसने भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न देशों में पैदा हुए विभिन्न महात्माओं द्वारा अपने उपदेश का दिव्य सन्देश सुनवाया है।···धर्म समाज की एकता के लिए है, न कि पृथक्-पृथक् रह कर उसके टुकड़े करने के लिए। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान को क्रिश्चियन होने में आपत्ति नहीं प्रकट करनी चाहिए। उसी प्रकार क्रिश्चियनों को भी अन्य धर्मों के सत्य को ग्रहण करना चाहिए। उन्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए कि हम लोग प्रत्येक कार्य साथ-साथ करेंगे, लेकिन 'ईश-प्रार्थना' के लिए अलग-अलग बैठेंगे। इंग्लैण्ड एवं पश्चिमी देशों में स्थित कुछ (निष्कपट) साधु लोगों के इस आशय के पत्र कि मैं एक प्रशंसनीय नेक कार्य कर रहा हूँ—आते हैं, लेकिन उनके पत्रों में बाइबिल से उद्धृत ऐसे कुछ पदों की ओर भी मेरा ध्यान दिलाया जाता है कि "मोक्ष-प्राप्ति केवल यीशु मसीह की आराधना से ही होती है।" पृथकत्व की भावना हमेशा व्यक्तियों द्वारा ही नहीं आती, बल्कि इसके लिए कठोर क्रिया-पद्धतियाँ एवं संस्थाओं का विकास भी दोषी है। मैं मानता हूँ कि गहन अनुभव ही प्रत्येक धर्म का आधार होता है। जिसे ऐसा अनुभव प्राप्त है, ऐसा हर एक क्रिश्चियन् स्वभावतः ही चाहेगा कि वह अपना ईश्वर और मुक्ति संबंधी अनुभव दूसरों को भी बाँटे; पर उसे दूसरे धर्मों के अनुभवों को भी अपने अनुभव में सम्मिलित करने की इच्छा रखनी चाहिए।

प्रश्न : यदि क्रिश्चियन गिरजाघरों ने आपकी दृष्टि में भारत में कुछ भला कार्य किया है, तो वह कौनसा कार्य है ?

विनोबा : मेरी ऐसी मान्यता है कि किसी भी 'चर्च' अथवा किसी भी धर्म की विकसित संस्थाओं ने कोई भला कार्य नहीं किया है! 'चर्च' ने बुद्धि को केवल संकुचित बनाया है। लेकिन मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि व्यक्तिगत रूप से क्रिश्चियनों ने, मिशनरियों ने और भारतीयों ने भारत में बहुत अच्छा काम किया है। विशेष रूप से उन्होंने गरीबों एवं सुविधाहीन लोगों की सेवा की है, कुष्ठ-रोगियों के सेवा-कार्य का भार सर्वप्रथम क्रिश्चियनों ने ही उठाया। उनके कार्यों के पीछे यदि धर्म-परिवर्तन की भावना न रही होती, तो वे और भी अधिक अच्छा कार्य किये होते! क्रिश्चियनों के इस प्रकार के भद्र कार्य शुरू करने के पूर्व तक हिन्दूवाद में यह सेवा का आदर्श छिपा पड़ा था। क्रिश्चियनों के इस अभिक्रम ने हिन्दू धर्म में सेवा के आदर्श का बीजारोपण अवश्य किया है। *

* अमेरिकन भाई ए० सी० मिल्स और विनोबाजी के बीच हुए प्रश्नोत्तर। (गोपीनायकन्पट्टी, ता० २४-३)

प्रश्न : 'सर्वोदय' यदि बुराई की शक्ति को मान्य नहीं करता, तो क्या उसके असफल होने की सम्भावना नहीं है ? क्रिश्चियनों का ऐसा विश्वास है कि 'सर्वोदय' व्यक्ति और समाज में निहित बुराई के तत्त्व को मान्य नहीं करता, इसलिए उसके असफल होने की सम्भावना है।

विनोबा : सर्वोदय बुराई के तत्त्व को मान्य नहीं करता, अच्छाई-भलाई के तत्त्व को मान्यता प्रदान करता है। 'अच्छाई' 'बुराई' से कहीं अधिक शक्तिशाली होती है। इस संदर्भ में हमें बुराई को महत्त्व न देकर, उसका डट कर सामना करना चाहिए। हमें इसके समक्ष भीरु नहीं बनना है। इसकी पराजय ध्रुव है, इस बात का पूर्ण विश्वास होना चाहिए। बुराई के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। भलाई की शक्ति अपार है, इसके समक्ष बुराई टिक नहीं सकती।

प्रश्न : व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्तिगत मालकियत आवश्यक है। क्या ग्रामदान व्यक्तित्व का उन्नयन नहीं चाहता ?

विनोबा : व्यक्ति और समाज के विकास का उत्तरदायित्व तो गाँवों पर होना ही चाहिए। 'साम्यवाद' यदि उत्तरदायित्व की न्यूनता का द्योतक है, तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने 'सम्पत्ति' का अर्थ ही नहीं समझा है। 'कम्यून' शब्द का मूल बाइबिल में है—जैसे परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार की सम्पत्ति को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं मान कर सामूहिक सम्पत्ति मानता है, वैसे ही गाँव के स्तर पर गाँव की सम्पूर्ण सम्पत्ति को सभी अपनी तथा गाँव में रहने वाले सभी की समझेंगे। सम्पत्ति के सम्बन्ध में लोगों की यह दृष्टि उत्तरदायित्व की हीनता का सृजन नहीं करेगी। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आधुनिक विज्ञान भी बहुत अंशों तक स्वार्थ की भावना का निर्मूलन करने में सहायक सिद्ध हो रहा है। इस वैज्ञानिक युग में मनुष्य एक-दूसरे के अति समीप आ गया है। चीनी लेखक 'लाओ त्से' के अनुसार वे दिन बीत गये हैं, जब मनुष्य अपने पड़ोसियों के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी नहीं रख पाता था। केवल कुत्तों के भूँकने की आवाज सुन कर कल्पना कर लेता था कि पास में कोई बस्ती अवश्य है। विज्ञान आवागमन की सुविधा और मानव के व्यापक जीवन स्वार्थ की भावना को मिटाने में अवश्य सहायक होंगे। मैं चाहता हूँ कि परिवार में जो प्रयोग हुआ है, उसे गाँव के स्तर पर लागू किया जाय।

प्रश्न : यीशु मसीह के पुरातन अनुयायियों ने अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति बेच दी थी और प्रत्येक वस्तु पर उनका सामूहिक स्वामित्व था। फिर भी ऐसी संस्थाएँ जीवित न रह सकीं, इसका क्या कारण था ?

कुछ लोगों ने कहा कि ईश्वर का राज्य अंदर है—"किंगडम् ऑफ गॉड इज़ विदिन यू" इसका अर्थ ईश्वर तुम्हारे बाहर नहीं है, अंदर ही है—ऐसा नहीं है। ईश्वर बाहर तभी आ सकता है, जब वह अंदर होगा। उन्होंने एक प्रक्रिया बतायी कि अगर दुनिया में ईश्वर को लाना होगा, तो पहले उसे अंदर लाना होगा। लोगों के हृदय में हम जब चित्त-शुद्धि लायेंगे, तब यह काम आसान होगा।

कुछ लोगों ने प्रयत्न किया कि ईश्वर का राज्य अंदर से लाया जाय। वे अंदर का राज्य लाने की चेष्टा में बाहर की तरफ उदासीन रहे। बाहर दूसरे का ही राज्य रहे और अंदर ईसा का राज्य लाने के एकांगी प्रयत्न से यश नहीं मिला। बाहर की परिस्थिति अगर गलत रही, तो अंदर की परिस्थिति से कुछ फर्क नहीं होगा। उसके उल्टे हृदय-शुद्धि का प्रयत्न नहीं करते हैं और बाहर की परिस्थिति अच्छी हो ऐसा चाहते हैं, तो वह भी नहीं होता है। इस वास्ते अंदर से शुद्धि और बाहर से अच्छी व्यवस्था का प्रयत्न होना चाहिए।
(पोतनदी, मदुरा, २२-३) —विनोबा

www.vinoba.in

विनोबा : उनकी असफलता का कारण स्वामित्व-विसर्जन नहीं था, बल्कि अभिक्रम और अनुत्पादक श्रम ही था। विचार नहीं, बल्कि विचार का प्रयोग गलत था। इसलिए अन्य लोगों को अच्छे ढंग से उस विचार को मूर्त रूप देना चाहिए।

(श्रोताओं के बीच से आवाज आयी—"यीशु मसीह का पुनः प्रादुर्भाव होगा।")

विनोबा : मेरी ऐसी मान्यता है कि कोई भी क्रिश्चियन इस बात पर विश्वास नहीं करता कि यीशु मसीह की मृत्यु हुई है! भद्र पुरुषों की कभी भी मृत्यु नहीं होती और अभद्र कभी जीवित नहीं रहता। यीशु मसीह कोई अन्य शरीर क्यों धारण करेंगे? हम लोग अपने इस शरीर को इतना पवित्र बनायें कि इसमें उनका प्रवेश हो सके।

प्रश्न : केरल की बहुसंख्य जनता क्रिश्चियन है। उनके लिए आपका क्या उपदेश है?

विनोबा : जैसा कि मैं अपने अमेरिकन मित्र (ए० सी० मिल्स) से कह चुका हूँ कि क्रिश्चियनों को पृथक् नहीं रहना चाहिए। आप लोगों से भी यही निवेदन करना चाहता हूँ। आप लोगों की ओर से मुझे इतनी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि अपने विश्वासों पर दृढ़ रहते हुए एक क्रिश्चियन जैसा जीवन व्यतीत कर सकूँ, हिन्दू होते हुए भी एक अच्छा क्रिश्चियन हो सकूँ। तभी मैं आपके विश्वासों को अपना सकूँगा। यीशु मसीह ने कहा है : "मेरे पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं।" हम सामूहिक मौन-प्रार्थना भी कर सकें, क्योंकि नाम-विशेष पर किसीको आपत्ति हो सकती है, लेकिन मौन-धारण पर किसीको आपत्ति नहीं होगी।

हिन्दुओं के अनुसार 'राम' ईश्वर है। राम शब्द से आप भय क्यों खाते हैं? क्या यह शैतान का द्योतक है? विष्णु के दो हजार नामों में से मुख्य है—'शब्दातीतः' 'शब्दसहः।' यदि भगवान् हम लोगों के शब्दों को सहन कर लेता है, तो हम और आप क्यों न करें? रूढ़िवादी मुसलमानों ने तो गांधीजी के "अल्लाह ईश्वर तेरे नाम" पर भी आपत्ति प्रकट की! जिस प्रकार 'वाटर' और 'पानी' एक ही पदार्थ का अर्थ-बोधक है, उसी प्रकार 'राम', 'गॉड' और 'अल्लाह' भी एक ही है। ईश्वर शब्दातीत है।

प्रश्न : 'कुष्ठ-सेवा-आश्रम' जैसी अन्य संस्थाएँ ग्रामदानी गाँवों में किस प्रकार काम कर सकती हैं?

विनोबा : ऐसी संस्थाओं को ग्राम-समाज में मिल जाना चाहिए। वे गाँव में 'लेप्रोसी कॉलनी' स्थापित कर सकती हैं। यदि गाँव छोटा हो, तो दो-तीन गाँव मिल कर ऐसे कार्य कर सकते हैं।

प्रश्न : विशेष रूप से हम लोगों के लिए आपका क्या विशिष्ट उपदेश है?

विनोबा : प्रेम और सहयोग।

प्रश्न : भारतीय गाँवों की वास्तविक आवश्यकता स्वच्छता है। इस दिशा में हम लोग असफल रहे हैं, ऐसा हम स्वीकार करते हैं।

विनोबा : ऐसा कहा जाता है कि ईश्वरी भाव-सम्पन्नता के बाद स्वच्छता का स्थान है, पर मैं कहता हूँ की स्वच्छता एवं ईश्वरी भाव-सम्पन्नता समानार्थक हैं। केवल शरीर की स्वच्छता ही आवश्यक नहीं है। आभ्यन्तरिक स्वच्छता अर्थात् हृदय की शुद्धता भी आवश्यक है।

प्रश्न : भारतीय गाँवों के दारिद्र्य का हल क्या है?

विनोबा : मेरी दृष्टि से ग्रामोद्योग और कृषि में सहकारिता ही इसका एकमात्र हल है। ग्रामोद्योगों की पुनः प्रतिष्ठा के बाद गाँव धनधान्य-सम्पन्न होगा। कच्चे माल से पक्का माल गाँवों में बनाया जाय तथा अपनी आवश्यकता के बाद जो बचे, केवल उसका ही निर्यात हो। ऐसा करने से ग्रामलक्ष्मी का बहाव रुकेगा।

प्रश्न : शहरों में स्थित कुलियों की समस्या पर आपका क्या विचार है?

विनोबा : यदि हम गाँवों की समस्या हल कर लेते हैं, तो इसका प्रभाव शहरों पर पड़े बिना नहीं रहेगा। हम बड़े-बड़े व्यापारियों और मिल-मालिकों के समीप भी जायँ। सम्पत्ति-दान-यज्ञ आन्दोलन इस समस्या को हल कर सकता है। आज होता यह है कि लोग गाँवों को छोड़ शहरों की ओर भागे चले आ रहे हैं। यदि हम गाँवों को सर्वोदय के आदर्श पर आकर्षक और सुन्दर बना दें, तो लोग गाँवों की ओर मुड़ सकते हैं। 'गाँवों की ओर चलो', यह हमारा नारा हो। जहाँ तक अन्तरिम काल का प्रश्न है, इसके लिए सम्पत्तिदान लाभदायी सिद्ध हो सकता है।

प्रश्न : क्या संपत्तिदान से आलस्य को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा?

उत्तर : सम्पत्तिदान में लोगों को रोजगार और आवश्यक वस्तुएँ ही दी जायँ, रुपया-पैसा नहीं।

---

*"साउथ इंडिया क्रिश्चियन फेलोशिप" के सदस्यों के साथ चर्चा।
पुलियाम्पट्टी, मदुरा, २३-३-'५७

श्री जयप्रकाश बाबू की क्रांतियात्रा से—

(धर्मवीर प्रसाद सिंह)

पिछले दिनों उत्तर बिहार के भूदान-शिविरों का उद्घाटन करने के लिए श्री जयप्रकाश बाबू की यात्रा पाटलिपुत्र से शुरू होकर मुंगेर जिले के जमुई सबडिवीजन में समाप्त हुई। उन्होंने पटना, छपरा, हाजीपुर, मुज़फ्फरपुर, मोतिहारी, बेतिया, सीतामढ़ी, बहेड़ा, मधुबनी, कुर्भौली, बेगुसराय, खगड़िया, मुंगेर, असरगंज, लक्खीसराय, जमुई के शिविरों का उद्घाटन किया। सभी शिविरों के कार्यकर्ताओं के बीच सन् '५७ के संदेश देने के अलावा प्रत्येक जगहों में आम सभा तथा विद्यार्थियों की सभा में आपने सन् '५७ का पावन संदेश सुनाते हुए विद्यार्थियों को आह्वान किया कि इस महान् अहिंसात्मक क्रान्ति को इस क्रान्ति-वर्ष के भीतर ही सफल बनाने के लिए वे पूरे वर्ष का समय लगावें।

उन्होंने कहा : "आप यदि यह मानते होंगे कि इससे हमारा एक वर्ष का समय बर्बाद हो जायगा, तो यह आपकी भूल होगी। आप इस एक वर्ष में जो ज्ञान हासिल करेंगे, उतना अनुभव आपको कालेजों के पाँच वर्ष की पढ़ाई में भी नहीं हो सकेगा। अमेरिका में मैं पढ़ता था। साधारण मध्यमवर्गीय परिवार में पैदा होने के कारण ऐसी स्थिति नहीं थी कि घर से पैसे मँगा सकता, जिससे कालेज की फीस तथा अपने खाने-रहने और पुस्तक खरीदने का काम हो सके। मैं वहाँ मजदूरी करके अपना तथा अपनी पढ़ाई का खर्च पैदा करता था। मैंने खेत और कारखाने की मजदूरी से लेकर कालेज में अध्यापन तक का कार्य किया। मैंने भी अमेरिका में बहुत लम्बी यात्राएं कीं। खेतों में काम करता था और जब कुछ पैसे जेब में हो गये, तो फिर उससे आगे निकल आया। जहाँ पैसे जेब से समाप्त हो गये, तो फिर वहाँ ५-१० रोज मिहनत-मजदूरी करके आगे बढ़ता था। जो ज्ञान और अनुभव मैंने उस सत्र में पाया, उसकी कीमत ही नहीं आँकी जा सकती। आप यह हर्गिज न मानें कि आपको इस एक वर्ष में हानि होने वाली है। इसका लाभ तो आपको बाद में मालूम होगा।"

सेवा के जीवन में प्रवेश का अपना इतिहास बताते हुए श्री जयप्रकाश बाबू ने कहा : "सन् '२२ के उस दिन को मैं कभी भूल नहीं सकता, जब मौलाना आजाद के व्याख्यान से पटने के विद्यार्थियों में एक क्रान्ति की लहर फैल गयी। दूसरे ही दिन पटना कालेज, बी० एन० कालेज तथा पटना के स्कूलों के छात्र ताँता बाँध कर चले जा रहे थे—अपने को भारत माता की सेवा के लिए समर्पण करने, अपने पूज्य नेता श्री राजेन्द्र प्रसादजी के कदमों में। मैं भी उसमें एक सौभाग्यशाली छात्र था। मित्रो, आज जो कुछ मैं हूँ, हूँ कुछ नहीं; एक अदना देश-सेवक हूँ, यह सब उसी घटना का परिणाम है।"

वर्तमान् युग की समस्याओं के सम्बन्ध में बोलते हुए उन्होंने कहा : "आज कोई समस्या विश्व के सामने है, तो वह नैतिकता की समस्या है। आर्थिक और राजनैतिक समस्या तो गौण है, और इसका एकमात्र समाधान है—अहिंसा का विकास। आज अहिंसा का विकास करना युग की पुकार है। अगर अहिंसा का विकास मानव-प्रवृत्ति में नहीं हुआ, तो संसार को नाश से कोई बचा नहीं सकता। वर्तमान युग में हिंसात्मक अस्त्र-शस्त्रों का विकास इस विज्ञान के द्वारा इतना हो गया है कि यह प्राणी-मात्र को नष्ट करने पर तुला हुआ है। विज्ञान का संयोग जब अहिंसा से होगा, तो मानवीय मूल्यों का विकास होगा।"

श्री जयप्रकाश बाबू के ऐसे भाषणों का गहरा असर नागरिकों, विद्यार्थियों और ग्रामीणों पर पड़ा। लोगों में नयी जान आ गयी, नया उत्साह उमड़ पड़ा। फलस्वरूप **इस यात्रा-काल में ८३६ विद्यार्थियों तथा ५०० नागरिकों एवं ग्रामीणों ने अपने एक वर्ष का समय इस आन्दोलन की सफलता के लिए समर्पित किया।**

मुजफ्फरपुर शहर की आम सभा में श्री जयप्रकाश बाबू के व्याख्यान के बाद एक सज्जन आये और भावभरे शब्दों में कहने लगे कि "आपकी बातें बिल्कुल ठीक हैं। मेरे दो लड़के हैं, एक प्रवेशिका पास और दूसरे ने बी. ए. की परीक्षा दी है। मैं अपने बी. ए. में पढ़ने वाले लड़के को इस कार्य के लिए समर्पित करता हूँ। मैं स्वयं भी यथासम्भव अधिक से अधिक समय इस काम में दूँगा।'

दूसरी घटना बेनिया कालेज की है। जयप्रकाशजी के भाषण के बाद एक प्रोफेसर साहब बोलने के लिए उठे। उन्होंने कहा कि "मुझे तो खुशी होगी कि कल वर्ग में मैं जाऊँ और वर्ग बिल्कुल खाली हो और सुनूं कि सारे छात्र भूदान-आन्दोलन में लग गये। पीछे से मैं भी उस यज्ञ की पूर्णाहुति में अपना जीवन लगा दूँ।" इस प्रकार की शुभ घटनाएँ बराबर घटती रहीं।

---

www.vinoba.in

पावन प्रसंग:

"हमसे भी लिये जाओ !"

(सुरेश राम)

गाँव कौंधियारा, तहसील करछना, जिला इलाहाबाद। छह मील की पैदल यात्रा करके शाम को सूर्यास्त के बाद हम लोग गाँव में पहुँचे। साथ में भाई लल्लूसिंह थे। इस गाँव में इलाहाबाद जिला भूदान-समिति के भूतपूर्व कार्यालय-मंत्री, श्री छेदीलाल त्यागी रहते हैं। इन्होंने वहाँ एक पाठशाला और लायब्रेरी भी खोल रखी है। रात को सर्वोदय की सभा हुई। सर्वोदय का विचार वहाँ रखा। विचार की पहुँच की रसीद के तौर पर भूदान माँगा। छेदीलाल भाई ने आरंभ किया। फिर उनमें हिम्मत आ गयी। एक के बाद एक दान-दाता खड़े होने लगे। हम दान-पत्र भरने लगे।

सहसा एक वयोवृद्ध ने कहा–"हमारे भी आठ बिस्वा लिखा लो।" यह सुन कर कुछ लोग हँसने-से लगे। हम ताड़ गये। हमने पूछा–"बाबा! आपके पास कितनी जमीन है?"

वह तो चुप रहे। मगर दूसरे लोगों ने बताया कि ढाई सौ-बीघे से कम क्या होगी। हाथ जोड़ कर दान इन्कार करते हुए कहा–"बाबा! आपसे आठ बिस्वा लेकर आपकी बदनामी नहीं करानी है।"

"बदनामी किस बात की?"

"लोग यही कहेंगे न कि विनोबाजी के आदमी आये थे और उनको आठ बिस्वा देकर आपने ठग लिया।"

वह चुप। मैं बढ़ा—"बाबा! आपकी हस्ती तो कहीं ज्यादा बड़ी है।"

"दान तो श्रद्धा का होता है।"

"जरूर। मगर सामर्थ्य का भी होता है। आपके ही सामने दो बीघे वाले भाई ने चार बिस्वा दिया है। और अगर हमें किसी मन्दिर या स्कूल या धर्मशाला चलाना होती, तो आपके आठ बिस्वा सर-आँखों पर कबूल करते। मगर यह दान तो ग़रीबी मिटाने के लिए, धरती की खरीद-बिक्री बंद करने के लिए और प्रेम राज लाने के लिए दान है।"

"बात आपकी सही है। पर हम ज्यादा नहीं दे सकते।"

"इसके माने यही होते कि हम अपनी बात आपको अच्छी तरह नहीं समझा सके। आप फिर विचार करें और इस समय न देकर बाद में दें।"

वह दान नहीं लिया। इसी तरह एक दान का और इन्कार किया। फिर भी सात दान-पत्र भरे गये।

दूसरे दिन सुबह को गाँव से चलने लगे। गाँव की हद पर आये होंगे कि एक मय्या तेज़ी से चल कर आयी और बोली—"भय्या! हमसे भी लिये जाओ।"

हम ठहर गये—"आओ, आओ, जरूर देओ।"

उसके पास दस बीघा जमीन थी। उसमें से सवा बीघे वाला एक खेत देना चाहती थी। दान-पत्र भरा। उस माता से अंगूठा लगाने को कहा, तो बोली–"हमार बिटुआ निशान करब!"

वह गयी, अपने बेटे को बुला कर ले आयी। बेटे ने दस्तखत कर दिये। हाथ जोड़ कर माँ-बेटे से बिदा ली।

आगे बढ़े। गाँव का आखरी घर—एक हरिजन परिवार। कुछ ज़मीन थी उसके पास। रात जो दो दान इन्कार किये, उसकी खबर सारे गाँव में फैल चुकी थी। उसकी बदौलत भूदान का रहस्य लोग आपसे आप समझ गये।

उस घर के मुखिया, चौधरी कहने लगे—"हमारी तो औक़ात ही क्या! मगर धर्म का दान है। हमारे परिवार की तरफ से आधा बीघा ले लो।"

सात बीघे में से आधा बीघा! भाई और कई बच्चे–नाती!

दान-पत्र भरा गया। चारों भाइयों ने अंगूठा लगाया। मुखिया बोले, "बाबू! बड़ा नेक काम आपने उठायो है। यह पूरो होकर रहेगो।"

* * *

गाँव बरनपुर, तहसील मेजा, जिला इलाहाबाद। रात को आठ बजे गाँव में पहुँचे। जीवन-दानी कार्यकर्ता, श्री राघव शुक्ल का घर। पहले से इत्तला थी। लोग जमाये। प्रार्थना के साथ तुरन्त सभा शुरू कर दी गयी।

ज्यादातर भूमिहीन लोग बैठे थे। थोड़े में भूदान का विचार समझा कर उनसे कहा–"यह देने का आन्दोलन है। आप सब समझते होंगे कि हमारे पास तो ज़मीन नहीं—हम क्या दें। लेकिन कोई होता है–ज़मीन और पैसे का धनी। कोई होता है–मेहनत का धनी। यह दुनिया ज़मीन या पैसे वाले को अमीर कहती है और मेहनत वाले को ग़रीब! मगर सच यह है कि दोनों ही अमीर हैं, दोनों ही ग़रीब हैं। एक ज़मीन व पैसे का अमीर, तो मेहनत का ग़रीब; दूसरा ज़मीन व पैसे का ग़रीब, तो मेहनत का अमीर। भगवान् ने ऐसा किसीको नहीं बनाया जो हर तरह से ग़रीब हो। किसीके पास कोई धन, किसीके पास कोई धन! इस वास्ते आप भी दे सकते हैं, आपको देना चाहिए। जब आप देंगे तो दूसरों से माँग भी सकते हैं। इसी तरह भूमि की मालकियत मिटेंगी और खेती गाँव-गाँव में प्रेम से बँटेगी। मगर पहले खुद देंगे, फिर भर-भर कर पायेंगे।"

दरिद्रनारायण का ही मेला लगा था। एक वयोवृद्ध ने खड़े होकर कहा—"हम साल में तीन घड़ी (पंद्रह सेर) अनाज दिया करेंगे।"

वह एकदम भूमिहीन। दूसरों के खेत में मज़दूरी करने वाला बूढ़ा—उसने सवा सेर हर महीने या साल में पंद्रह सेर का दान लिखाया। हर महीने की एक दिन की कमाई। तुरंत एक हरिजन खड़ा हुआ। वह उससे भी ज्यादा कमजोर, भूमिहीन। उसने भी पंद्रह सेर का दान-पत्र लिखाया। दोनों ने अंगूठे लगाये।

फिर क्या था? देने का ताँता लग गया–एक-दो नहीं, तैंतीस भाइयों ने पंद्रह सेर वार्षिक सम्पत्तिदान लिखाया। तीन गाँवों के ये लोग थे। सभी भूमिहीन! सबने दिया। और कहा—"गाँव में आप आवें, तो औरों से भी दिलायेंगे।"

पर अभी तक भूमि-दान नहीं मिला था—"क्या इस सभा में भूमि का दान कोई नहीं करेगा?"

"हमपे तो हईये न!"

"ठीक है, आपने तो सम्पत्तिदान दे दिया। मगर क्या इस सभा में कुछ भी भूमि रखने वाला कोई नहीं हैं?"

नाई का एक लाल खड़ा हो गया। नाई का पेशा करता है। बड़ा परिवार है। पाँच-छह बीघा ज़मीन है। दस बिस्वा लिखाया। एक और भी खड़ा हुआ। उसने भी दस बिस्वे का दान लिखाया।

इस तरह तैंतीस दानपत्र भरे गये। जनता-जनार्दन को प्रणाम किया। "हमारे गाँव में बिला ज़मीन, कोई न रहेगा कोई न रहेगा" के उद्घोष और जय-जयकार के साथ सभा समाप्त हुई।

ग्रामदानी गाँव को क्या करना है?

विनोबा:—इस गाँव में खेती के सिवाय दूसरे कौन-कौनसे धंधे चलते हैं?

ग्रामीण:—खेती ही चलती है। गाँव में कुंभार के दो परिवार हैं।

विनोबा—गाँव में कुंभार हैं, तो ठीक ही है। पर वह कोई ऐसा उद्योग नहीं है कि जिसको धंधा कहा जाय। वह एक साधारण धंधा माना जा सकता है। जूते बनाना, बुनकर ये धंधे हो सकते हैं। गाँव में कंभार तो होते ही हैं, क्योंकि उनके खिलाफ कोई खड़ा नहीं है। लेकिन बुनकर के खिलाफ मिलें खड़ी हैं और चमार के खिलाफ "बाटा" खड़ा है! इसीलिए जिनके खिलाफ कोई खड़े हैं, वे खतम हुए हैं। वैसे कुंभार के खिलाफ कौन खड़ा है? वह बचा है बेचारा!

ग्रामीण:—आजकल अलमुनियम के बर्तन निकले हैं।

विनोबा:—हाँ पर देहात में वे नहीं टिक सकते। मिट्टी के साथ खेती करते हैं और मिट्टी के साथ धंधा करते हैं। कौन क्या कर सकता है? हाँ तो भी दो कुंभार के परिवार गाँव में हैं ऐसा आप कहते ही हैं। खेती में कामकब तक चलता है?

ग्रामीण:—छह-सात महीने चलता है।

विनोबा:—यही हालत सारे हिंदुस्तान में है। जहाँ पानी है, वहाँ कुछ ज्यादा काम होता होगा। नहीं तो खेती का काम छह महीने ही होता है और छह महीने बेकारी! दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ रही है, तो हर आदमी के लिए जमीन का रकबा कम रहेगा। इस हालत में गाँव तभी बढ़ेगा, जब कपड़ा हम तैयार करेंगे। इसके अलावा अनाज जमीन में से पैदा होता है। जमीन चंद लोगों के हाथ में रहे यह नहीं होगा। तो, आपको चार बातें करनी हैं:

(१) गाँव की जमीन सबकी मानें।

(२) कपड़ा गाँव में ही तैयार करना है।

(३) मक्खन, दूध, दही गाँव के लोग, बच्चे खायं। उसे बेचना नहीं है।

(४) मनुष्य के मल-मूत्र का खाद तैयार करना चाहिए।

(थीडीयन, मदुरा, १२-३)

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ
२६ अप्रैल सन् १९५७

लोकनागरी लिपि *

हृदय-क्षेत्र में राम-रावण का संघर्ष!

(वीनोबा)

आज रामनवमी है। छह साल पहले तेलंगाना की यात्रा भी रामनवमी के दीन ही हैदराबाद से शुरू हुअी थी। आज के दीन कुल हींदुस्तान में भगवान् श्रीरामचंद्रजी का स्मरण, अुत्सव और कीर्तन सब लोग करेंगे। रामचंद्र हजारों-लाखों साल पहले अेक महान् पुरुष हो गये। अुनका चरीत्र भी हम 'रामायण' में पढ़ते हैं। परंतु रामनवमी के दीन जीस राम का सारे भारत में अुत्सव मनाते हैं, वे राम केवल अेक मापुरुष नहीं हैं, बल्की अेक सनातन पुरुष हैं। अैसे सनातन पुरुष हम सबके हृदय में बसते हैं। अुन अंतर्यामी को ही राम के रूप में, राम के नाम से हम सब लोग जानते हैं। अयोध्या में जन्म लेने वाले राम की बात तो पुरानी हो गयी, जो अंतर्यामी हृदय में वीराजमान है, अुसकी अयोध्या तो यहां अंतर में है। "चींतये कोवील"—यह चीत्त ही मंदीर है और अुसी में भगवान् रहते हैं। अीसी अंतर्यामी पुरुष की अेक लीला रामावतार, कृष्णावतार, बौद्धावतार में हो गयी। अुसकी लीला अनंत काल से चल रही है और आगे भी चलेगी। दुनीया भर के जीतने महापुरुषों ने आज तक जीतने अच्छे काम कीये और आगे भी करेंगे, वे सबके सब राम के चरीत्र हैं, रामलीला है। दुनीया में आज तक जीतनी बुराअीयां हुअीं और होती रहेंगी, वे सब रावण-चरीत्र हैं। रावण कोअी व्यक्ती-वीशेष रावण नहीं है। पुराने जमाने में कोअी हुआ होगा, अुसकी हमें कोअी चींता नहीं। परंतु जीस रावण के भय से दुनीया आज भी त्रस्त है और जीस रावण से मुक्ती राम दीलाता है, वह रावण वीकारों के रूप में हृदय में छीपा हुआ रहता है। मोह, आसक्ती, वासना; यह सब रावण है।

"गीता-प्रवचन" के चौदहवें अध्याय में हमने रावण, कुंभकर्ण और वीभीषण का जीक्र कीया है। अुसमें हमने कहा है की रावण रजोगुण की मूर्ती है, वीभीषण सत्वगुण की मूर्ती है और कुंभकर्ण तमोगुण की मूर्ती है और अीन तीनों का खेल और नाटक हमारे हृदय में चल रहा है। अीस हृदय से रावण और कुंभकर्ण को हटाना चाहीअे और वहां जो वीभीषण है, अुसे अीश्वर की शरण में रखना चाहीअे, यह सारी रामायण का सारांश है।

(गंगैकोंडन, तीरुनेलवेली, ८-४)

* लिपि-संकेत : ि = ी ; ी = ी ; ख = ख; संयुक्ताक्षर हलंत-चिह्न से।

उत्तर-प्रदेश के भूदान-कार्यकर्ताओं से—

आज हिन्दुस्तान की ओर सारी दुनिया की जो आँखें लगी हुई हैं, उत्तर-प्रदेश की प्रेरक शक्ति मंगरौठ के रूप में दी। पर आज तो दूसरे प्रान्त उससे आगे बढ़ गये हैं। ऐसा लगता है कि उत्तर-प्रदेश मंगरौठ को अर्पण करके उतने में ही सन्तोष मान कर चुपचाप बैठ गया पर सेवकों के लिए संतोष ठीक नहीं। इसलिए हमें सोचना है कि क्या बनारस जिले में ऐसा कोई क्षेत्र है कि जहाँ ग्रामदान की कल्पना लोगों की समझ में आ सकती है?

मध्यप्रदेश में जब एक भी बड़ा कार्यकर्ता उपस्थित नहीं रहा, तो मजबूर होकर हमारे जैसे छोटे-छोटे दस-बारह कार्यकर्ताओं ने एकसाथ मिल कर घूमना शुरू किया। उसका कुछ अच्छा नतीजा निकला। उसके बाद हमने सामूहिक पद-यात्राओं का आयोजन किया। देहात के भाइयों के शिबिर लेकर उनकी टोलियाँ निकाल कर उन्हें घुमाना शुरू किया। इस तरह से एक साल में करीब-करीब हमने अपने संकल्प की पूर्ति की। सामूहिक पदयात्रा का यह जो तरीका निकाला, उसे कांचीपुरम् सम्मेलन ने सारे भारत के लिए अपना लिया।

आपके यहाँ काफी जमीन का वितरण अभी बाकी होगा। बारिश के पहले तो हमें इस जमीन का वितरण कर ही देना चाहिए।

प्रश्न है कि यह सब कौन करेगा? अभी तन्त्र-मुक्ति हो गयी है। तन्त्र-मुक्ति इसलिए की गयी कि लोग कहते थे कि आन्दोलन का काम भू-दान-समितिवाले करेंगे। हम क्यों करें? तो विनोबाजी ने उसे समाप्त कर दिया! और ठीक ही किया। दुनिया में आन्दोलन मुट्ठी भर लोगों से नहीं चलता।

अपने आन्दोलन की बाहरी गहराई का हमें अध्ययन कर लेना चाहिए। यह आन्दोलन क्यों आवश्यक है, इसका भी हमें अध्ययन करना होगा। केवल प्रेरणा दिखाने वाले या केवल जम कर एक स्थानमें प्रयोग सफल कर दिखाने वाले लोगों से काम न चलेगा। इस आन्दोलन को जन-आन्दोलन बनाना है। जनता द्वारा चलाना है। इसलिए लोक-संग्रह-वृत्ति होनी चाहिए। संघात की प्रक्रिया अब हमें खोजनी होगी।

जिला सेवकों का आदर्श

गीता कार्यकर्ता के लिए सम्बल देती है—"संघातश्चेतनाश्च धृतिः।" इन तीन प्रकार के कार्यकर्ताओं से उन-उनकी वृत्ति के अनुसार काम लिया जाय। लक्ष्य के लिए कदम किस प्रकार उठायेंगे, वह समय के अन्दर पूर्ण करेंगे, यह भी आप तय करें। कार्यकर्ता लोक-सेवक और निवेदक का 'पद' मानने लगते हैं। यह कोई पद नहीं, ऐसा हमें समझ लेना चाहिए। जिला-सेवक तो केवल जिले में होने वाले कार्य का निवेदन पूज्य बाबा को पहुँचाने वाला और वहाँ से आये सन्देश को आपको देने वाला पोस्टमैन है। यह सारा तन्त्र तोड़ने के बाद भी हम मानसिक तन्त्र में और फंसते जायँ, यह ठीक नहीं। यहाँ तो स्पष्ट रूप से यह समझ लेना चाहिए कि मैं जिला-सेवक होऊँ या न होऊँ, मुझे यह काम करना है। विनोबा चाहते हैं कि जिला-सेवक का आदर्श इतना ऊँचा रहना चाहिए कि वह कहे कि मैं बारह महीने इस काम के लिए देता हूँ तभी मैं जिला सेवक बन सकता हूँ। हमें साफ तौर से अपना दिल टटोल कर देख लेना होगा।

तंत्र-मुक्ति का अर्थ स्वैराचार नहीं

लोगों के पत्र आते हैं कि आपकी ओर से हमें जिला-सेवक के लिए स्वीकृति नहीं मिली। हमें अगर काम करना है, तो किसीसे स्वीकृति लेने की क्या जरूरत है? स्वीकृति मिलने पर ही काम करोगे, तो तन्त्र कहाँ टूटा? लोक-सेवक ऐसा समझते हैं कि वे तन्त्र-मुक्त हैं, आज़ाद हैं, तो वे चाहे जिसे चाहे जितनी जमीन बाँट देंगे, कानून की परवाह नहीं करेंगे ऐसा बिलकुल नहीं सोचना चाहिए। इससे काम चलने वाला नहीं है। लोक-सेवक को शक से परे रहना चाहिए। सेवक के लिए अगर शक जरा-सा भी आ गया, तो समझना चाहिए कि हमारी कोई योग्यता नहीं है।

स्वतंत्रता या तन्त्रमुक्ति का अर्थ स्वैराचार नहीं है। हमें अब अनुशासन और आत्म-नियमन की ओर विशेष रूप से बढ़ना है। मैं कहूँगा कि बनारस जिला उत्तर-प्रदेश के लिए उदाहरण बने और उत्तर प्रदेश का झांसी का सम्मेलन भारत को राह दिखाये।

(चौरहरा-बनारस के शिविर-भाषण से १०-४) —दादाभाई नाईक

www.vinoba.in

संरक्षण और सर्वोदय : २.

सर्वोदय में जिस ढंग के नियोजन की आकांक्षा है, उसके कार्यान्वित होने पर निरस्त्रीकरण की दिशा में निर्णायक कदम तो अपने आप उठ चुके रहेंगे। याने अहिंसक आधार पर जब आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना हो जायगी, तो राष्ट्र अहिंसा की अद्भुत शक्ति से स्वयमेव परिचित हो जायगा और तब वह अपनी प्रतिरक्षा (संरक्षण) के हेतु इसी शक्ति का उपयोग करने के लिए तैयार भी रहेगा। गरीबी, शोषण और विषमता दूर हो जाने पर राष्ट्र में एकता का प्रबल भाव उत्पन्न हो जायगा और तब अहिंसात्मक प्रणाली से आत्मरक्षा की व्यवस्था करना सुगम हो सकेगा। अहिंसक समाज में रहने वाले व्यक्तियों का जीवन ही इस ढंग का होगा कि उन्हें अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की विधि अपने आप ज्ञात हो जायगी। सर्वोदय-समाज की प्रवृत्ति ही आक्रमक या विस्तारवादी नहीं हो सकती। आक्रमण के लिए यह दूसरों को किसी प्रकार की उत्तेजना भी नहीं प्रदान करेगा, क्योंकि सभी राष्ट्रों से इसके वास्तविक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहेंगे। इस प्रकार युद्ध का भय समाप्त हो चलेगा तथा निर्भयता और आत्म-निर्भरता का भाव उत्पन्न हो जायगा।

यहाँ यह तर्क किया जा सकता है कि अभी तो ऐसे समाज की संभावना नहीं है। नव-समाज की यह स्थापना आगे चल कर कभी होगी। राष्ट्रों को इस बीच अपनी प्रतिरक्षा की तैयारी करनी ही पड़ेगी। किन्तु हम शक्ति-गुटों में सम्मिलित होने से अपने को बचायेंगे और ऐसी नीति अपनायेंगे कि जिससे वास्तविक और सक्रिय मैत्री की भावना दृढ़ हो। लोग सर्वत्र हिंसा से ऊबे हुए से हैं, किन्तु राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान हिंसा के माध्यम से करने की नीति में उनका विश्वास अब भी बना हुआ है। अहिंसात्मक प्रतिरक्षा के प्रति आज भी वे शंकाशील हैं। अहिंसा की शक्ति में विश्वास रखने वालों को ऐसे वातावरण की सृष्टि करने की कोशिश करनी होगी, जिससे लोगों में अहिंसात्मक प्रतिरक्षा का भाव उत्पन्न हो। लेकिन वह शंकाशीलता एक दिन में दूर नहीं हो सकती। जब तक लोग हिंसा और युद्ध को अनिवार्यतः आवश्यक समझते रहेंगे, तब तक सरकारों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अपनी सेनाएँ विघटित कर दें या सशस्त्र संरक्षण के भाव से विरत हो जायँ। जब तक लोगों में व्यापक रूप से अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की शक्ति, सामर्थ्य और महत्ता के प्रति दृढ़ विचार नहीं फैल जाता, तब तक सरकारें वह कार्य नहीं कर सकतीं। अतः वे निश्चय ही उन्हीं तरीकों और अस्त्रों से देश की रक्षा की व्यवस्था करती रहेंगी, जिनके प्रति उनकी आस्था है।

अहिंसा के प्रति निष्ठा रखने वाले सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत कर दिखा सकते हैं कि सैन्य-शक्ति द्वारा किये गये आक्रमण का मुकाबला किस प्रकार सत्याग्रह और असहयोग के तरीके से करके सफलता प्राप्त की जा सकती है। लेकिन वे इसमें तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि वे अपने जीवन से हर प्रकार की हिंसा का भाव निकाल बाहर नहीं करते; एवं स्वयंसेवकों को इस बात की शिक्षा प्रदान नहीं करते कि वे अहिंसा से हिंसा का मुकाबला करने का कौशल सीख लें। यही एक तरीका है, जिससे शंकाशील व्यक्तियों को अहिंसात्मक संरक्षण की शक्यता और सामर्थ्य का बोध कराया जा सकता है। चूंकि अहिंसा में निष्ठा रखने वाले यह नहीं चाहते कि विविध राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को कायम रखने के लिए सैन्य-शक्ति पर भरोसा रखें, अतएव वे स्वयं देश में सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए पुलिस अथवा सैन्य-शक्ति पर निर्भर न रहेंगे। अपराधों या अव्यवस्था की अवस्था में वे पुलिस की सहायता की अपेक्षा न करके स्थिति को स्वयं अहिंसात्मक तरीके से सुलझाने का प्रयत्न करेंगे। वे इस बात की कोशिश करेंगे कि स्वयंसेवकों की स्थायी टुकड़ी-शान्ति-सेना—संघटित कर ली जाय, जो किसी क्षेत्र में उपद्रव होने पर उसका शमन कर सके। शान्ति-सेना के ये सदस्य अपने-अपने क्षेत्रों में हिंसात्मक उपद्रवों का सामना करने की विधि सीख कर धीरे-धीरे समाज के सभी सदस्यों को यह बता सकेंगे कि सशस्त्र आक्रमण होने पर अहिंसात्मक असहयोग एवं सत्याग्रह की अन्य विधियों से किस प्रकार उसका सामना किया जा सकता है।

सरकार तथा विविध राजनीतिक दल भी ऐसे वातावरण की सृष्टि करने में सहायक हो सकते हैं, जिससे निरस्त्रीकरण की भावना उत्पन्न हो तथा अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की बात लोगों के मन में जमे। राजनीतिक दलों और संघटनों को चाहिए कि वे एक मत से यह निश्चय कर लें कि ऐसे विरोध-प्रदर्शनों का वे त्याग कर देंगे, जिनकी परिणति प्रदर्शनकारियों द्वारा हिंसा के अवलंबन में होती है और जिसके फलस्वरूप सरकार को शस्त्र-बल का उपयोग करना पड़ता है। सरकार को भी चाहिए कि देश में उपद्रव होने पर उसका दमन सैन्य-शक्ति से करने की नीति का त्याग कर दे तथा लोगों में उत्पन्न असन्तोष एवं द्वेष-भाव के निवारण पर अपना ध्यान केन्द्रित करके वह लोगों को शिक्षित करने का प्रयत्न करे, जिसमें जनता का मत ठीक बने। यदि सरकार यह देखे कि समझाने-बुझाने और समझौते के सभी मार्ग विफल हो चुके हैं और हिंसा रोकने के लिए पुलिस की सहायता लेना अनिवार्य हो गया है, तो उसे चाहिए कि वह पुलिस या शक्ति का कम-से-कम प्रयोग करे तथा इस बात के लिए तैय्यार रहे कि निष्पक्ष अदालती जाँच होने की अवस्था में वह उस जाँच-समिति को सन्तुष्ट कर सके कि हिंसा रोकने के लिए उसका कदम अनिवार्य था तथा पुलिस-शक्ति का कम-से-कम प्रयोग किया गया है।*

* सर्व-सेवा-संघ द्वारा शीघ्र प्रकाशित होने वाली "सर्वोदय-संयोजन" पुस्तक से।

साम्ययोग का एक विनम्र प्रयोग

खादी-ग्रामोद्योग-विद्यालय, शिवदासपुरा (जयपुर) के हम कुछ कार्यकर्ताओं ने साम्ययोग का एक छोटा-सा प्रयोग आरंभ किया है।

इस प्रयोग में आरंभ में सात भाइयों ने भाग लिया। इनमें छह का अपना कर्ज था। आमदनी और चालू खर्च को देखते हुए ऋण को जल्दी चुका सकने की किसीको आशा नहीं थी और इसीलिए कुछ के मन में असंतोष भी था। हम सब एक ही जगह रहते थे। सबका जीवन-स्तर समान था। सबके अवलंबित परिवार के सदस्यों की संख्या भी करीब-करीब समान ही थी और वह विद्यालय के बाहर था। हमें १५०) और ६०) के बीच में वेतन मिलता था। हम यह स्पष्ट देखते थे कि किसीके पास खर्च करने के बाद बचत कुछ अधिक हो जाती है, किसीकी कम होती है और कोई बचा ही नहीं पाता! चौबीसों घंटे साथ रह कर एक-दूसरे के दुःख-कष्ट को महसूस करें, यह स्वाभाविक था। तब सोचा कि हम अपना सामूहिक परिवार मान लें, सबकी अलग-अलग आय को सामूहिक मानें, खर्च को भी सामूहिक ही मानें और बचत भी सामूहिक हो। यह साफ था कि ऋण भी अब व्यक्तिगत न रह कर सामूहिक ही हो। नवंबर '५६ में प्रयोग शुरू हुआ। आरंभ में सात सदस्य थे। गत जनवरी में एक सदस्य और बढ़ा।

हम सब अपने वेतन को एकत्र कर लेते हैं। अपने तथा अवलंबित परिवार के मासिक खर्च के लिए आवश्यक रकम प्रत्येक ले लेते हैं। बची रकम का उपयोग ऋण चुकाने में करते हैं। कभी किसीके घर में कोई विशेष नैमित्तिक प्रसंग शादी, बीमारी, प्रसव आदि आये, तो इस रकम का उपयोग उसमें करते हैं। आरंभ में मासिक बचत १२५) तक होती थी। सबका कुल ऋण ३०००) के करीब था। इतनी बचत से इतना भारी ऋण बहुत लंबे समय तक चुकाया जा सकता था। दूसरे महीने में सबने अपना खर्च कम करके १५०) बचाना शुरू किया। अब १७५) तक बचत हो रही है। यह इस प्रयोग का भौतिक परिणाम है।

हमारी दृष्टि में यह गौण है। प्रमुख परिणाम तो हमारी 'पारिवारिक भावना का विकास' है। पहले हम सब एक स्थान पर रहते हुए भी अलग-अलग थे। अब एक ही परिवार के हैं। हमारा मन समीप आ गया है। प्रत्येक सदस्य दूसरे के बारे में सोचने लगा है। जिसको पहले यह असंतोष था कि मुझे कम वेतन मिल रहा है, आज वही अपने लिए जो रकम ले रहा है, वह अपने वेतन की रकम से भी कम है। प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता (सगापन) अनुभव करने लगा है। वैसे भी विद्यालय का वातावरण आत्मीयता का ही होता है, फिर भी इस प्रयोग से तो वह और निखर रहा है। इसीका हमें सच्चा आधार है। निजी खर्च के लिए रकम का जो विभाजन हम कर लेते हैं, उसमें किसी भी तरह का गणित काम में न लाकर सब आपस में दिल खोल कर चर्चा कर लेते हैं और आवश्यकता देख कर विभाजन कर लेते हैं। यह इस पारिवारिक भावना से ही संभव हो सका है।

—ति. न. आत्रेय

---

www.vinoba.in

पंचामृत

युद्ध की धमकी समाप्त की जाय

ऐटम बम तैयार करने में मेरा केवल इतना ही कार्य है कि मैंने राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के नाम लिखे गये एक पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि एटम बम तैयार करने की संभावनाओं का आविष्कार करने के लिए बड़े पैमाने पर उसके प्रयोग की आवश्यकता है। यह प्रयोग यदि सफल होता है, तो मानवता पर कितना बड़ा खतरा आ जाता है, इस बात की मुझे पूरी जानकारी थी, परन्तु मैंने ऐसा कदम इस आशंका से उठाया कि जर्मनी वाले शायद इस समस्या को हल करने के प्रयत्न में लगे हैं और उनके सफल होने की सम्भावना है। निश्चित रूप से शान्तिवादी होते हुए भी मैं ऐसी स्थिति में और कुछ नहीं कर सकता था। मैं मानता हूँ कि युद्ध में लोगों की हत्या करने में और साधारण रूप से किसी मनुष्य की हत्या करने में कोई अन्तर नहीं है।

जब तक विभिन्न राष्ट्र मिल-जुल कर आपसी झगड़ों का निपटारा और अपने हितों की रक्षा शांतिपूर्ण ढंग से समझौते द्वारा करने और युद्ध को समाप्त करने का निर्णय नहीं कर लेते, तब तक वे ऐसा महसूस करते हैं कि युद्ध के लिए तैयारी करने को वे विवश हैं। वे ऐसा मानते हैं कि इस शस्त्रीकरण की दौड़ में वे कहीं पीछे न रह जायँ, इसके लिए वे प्रत्येक सम्भव उपाय का, भले ही वह घृणित से घृणित हो, सहारा लेने के लिए तैयार हैं। यह मार्ग निश्चित रूप से युद्ध की ओर ले जाता है और आज की स्थिति में युद्ध का अर्थ होता है—सार्वजनिक रूप से विनाश।

ऐसी स्थिति में साधनों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का कुछ अर्थ ही नहीं होता। उसकी सफलता की कोई आशा नहीं है। इस दिशा में युद्ध की समाप्ति और युद्ध की धमकी की समाप्ति से ही काम बन सकता है। यही वह चीज़ है, जिसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि वह किसी भी दिशा में इस लक्ष्य के विरोधी कार्यों में अपने को शामिल नहीं होने देगा। समाज पर अपनी निर्भरता के प्रति जो भी मनुष्य जागरूक है, उससे यह सीधी माँग है और यह कोई असम्भव माँग नहीं है।

हमारे युग के सबसे महान् राजनीतिज्ञ गांधीजी ने हमें यह मार्ग दिखाया है। उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि जनता यदि एक बार सही रास्ता पा लेती है, तो वह कितना अधिक त्याग करने के लिए तैयार हो जाती है। उन्होंने भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए जो महान कार्य किया, वह इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि चाहे जितनी बड़ी अजेय भौतिक शक्ति हो, उस पर दृढ़ निश्चय-सम्पन्न इच्छा-शक्ति अधिक शक्तिशाली सिद्ध होती है।

('आइडियाज़ एण्ड ओपिनियन्स' से) —अलबर्ट आइन्सटीन

लोकसत्ता का सार क्या है ?

राज्य और लोक-समाज, दोनों को एक समझना गलत है। लोक-समाज जीवित व्यक्तियों का बना होता है। उसके बिना तो हम सब कोई रौबिन्सन क्रूसो बन जायेंगे। व्यक्तियों के जोड़ से वह कुछ अधिक है। उसके एक तरह का अपना मानस या आत्मा भी हो सकती है।

लोक-समाज में घनिष्ठता से और उसके साथ समरस होकर व्यक्ति की विशेषता की हानि नहीं होती, बल्कि व्यक्ति और भी व्यक्तित्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए लोकशाही जहाँ व्यक्तियों के व्यक्तिगत महत्त्व का आग्रह रखती है, वहाँ लोक-समाज के मूल का भी प्रतिपादन करती रही है।

राज्य तो एक अजस्र, रहस्यमय, अतिरूप सत्य है, जिसके द्वारा सभी नागरिक जीते हैं। वह फासिज्म का इंद्रजाल है। असल में समाज की दूसरी संस्थाओं की तरह राज्य-संस्था भी एक संस्था है, इससे अधिक वह कदापि कुछ नहीं हो सकती। लोक-समाज अद्वितीय होता है। वह सजीव होता है। राज्य को लोक-समाज समझना, यंत्र को मनुष्य समझने के बराबर है। कुछ राज्य-सुधारवादी इस तरह से लिखते और बोलते हैं, मानो रास्ते के पहले मोड़ पर ही हमारे लिए ऐसी चमत्कारपूर्ण राज्य-संस्था इंतज़ार कर रही है, जैसी दुनिया में आज तक कभी नहीं देखी गयी। वे कुछ ऐसा मानते हैं कि पुलिस का औसत सिपाही एकाएक किसी तिलिस्म से एक उत्कृष्ट, बुद्धिमान, कृपाशील, अतिथि-परायण गृहिणी में बदला जा सकता है!

राज्य एक संस्था है, एक औज़ार है, एक यंत्र है और इनकी जो मर्यादाएँ होती हैं, वे राज्य-संस्था की भी रहेंगी। उसमें चाहे जितने सुधार क्यों न हों, फिर भी वह भरी-भरकम मंद और सुस्त ही रहेगी। अगर उसमें सबसे अधिक प्रतिभाशाली और शीघ्र रचनापटु व्यक्ति भी शामिल हो जायँ, तो भी वह किसी-न-किसी तरह उनकी धार भोथरी कर देगी। परियों की कहानी का किसी आदर्श राज्य-संस्था के आने की बड़ी-बड़ी बातें करना फिजूल वक्त ज़ाया करना है। राज्य-संस्था लोकसमाज के राजनैतिक और आर्थिक कर्तव्य को पूरी तरह व्यक्त कभी कर ही नहीं सकती। उसका रूप हमेशा काम-चलाऊ रहेगा और उसकी चाल धीमी रहेगी। वह एक भारी-भरकम यंत्र है और उसी तरह का उसका रवैया होगा। आज वह दूसरी सारी संस्थाओं का हाकिम है।

लोकसत्ता का सार यह है कि किसी भी एक व्यक्ति के हाथ में प्रभुसत्ता न होनी चाहिए। आर्थिक सत्ता के लिए यह बात जितनी लागू है, उतनी ही राजनीतिक सत्ता के लिए भी लागू है। एक को नियंत्रित करना और दूसरी को अनियंत्रित छोड़ देना, लोकसत्ता का उपहास है। किसी एक व्यक्ति या गिरोह को यह हक़ नहीं हो सकता कि वह दो हज़ार व्यक्तियों के आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को अपनी मौज या लोभ के लिए खतिहान बनाये। अपने पड़ोसियों की मरम्मत करने के लिए कुछ पेशेवर मुठभर्दों को भरती कर लेने का जिस तरह किसीको कोई हक़ नहीं है, उसी तरह यह हक भी नहीं है। आज भी व्यक्ति अपने हाथ में इतनी आर्थिक सत्ता इकट्ठी कर लेते हैं कि गैरसरकारी सेनाओं के सेनापति बन जाते हैं। दरअसल यह लुटेरापन और सरजोरी है।

—जे. बी. प्रीस्टले

संघर्ष का वास्तविक कार्य

कार्ल मार्क्स मानते थे कि राज्य के पारस्परिक विरोध, आदर्श और व्यावहारिक कल्पनाओं के संघर्ष द्वारा सब कहीं सामाजिक सत्य को खोज निकाला जा सकता है। इसलिए हमें राजनीति की आलोचना, राजनीति के वास्तविक संघर्ष में भाग लेने से अपने को रोकना नहीं चाहिए। इस तरीके से हम दुनिया के सामने सिद्धान्तशास्त्री के रूप में पेश होने से अपने को बचा सकेंगे। यह सत्य है, सिर नवाओ और इसकी पूजा करो कहते हुए एक नये सिद्धान्त को दुनिया के सामने उपस्थित करने से हम अपने को बचा सकेंगे। हमें दुनिया के लिए नये सिद्धान्त, नये नियम उसके पुराने सिद्धान्तों से निकाल कर विकसित करने होंगे। हमें दुनिया को यह नहीं कहना है कि "अपने झगड़ों को छोड़ो, वह मूर्खतापूर्ण हैं। हमारी बात सुनो, क्योंकि हमारे पास वास्तविक सत्य है।" इसकी जगह हमें दुनिया को यह दिखलाना है, कि क्यों उसे संघर्ष करना पड़ता है। इस तरह की चेतना को चाहे दुनिया पसंद करे या न करे, उसे प्राप्त करना होगा।

मानवता तभी पूर्णतया मुक्त हो सकेगी, जब कि वास्तविक वैयक्तिक मानव के रूप में राज्य का निराकार नागरिक बदल जायगा और अपने प्रायोगिक जीवन में वैयक्तिक मानव, अपने वैयक्तिक काम, अपनी वैयक्तिक स्थितियों में एक सामाजिक प्राणी बन जायगा, जब कि मनुष्य सामाजिक शक्ति के तौर पर अपनी निजी शक्तियों को स्वीकार और संगठित करेगा, जिसके कारण सामाजिक शक्ति को राजनीतिक शक्ति के रूप में अपने से अलग नहीं रखेगा।

वैयक्तिक सम्पत्ति के शासन से मानवता की मुक्ति आदि के साधन होने की जगह वह मानवता की कड़ियों को मजबूत करने का साधन बन गया है।

यह हमें मालूम ही है कि पुराने समाजवादियों और साम्यवादियों की यही निर्बलता थी कि वह साम्यवाद की स्थापना दिमागी संघर्ष और हृदय-परिवर्तन द्वारा करना चाहते थे। मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद ने उस निर्बल नींव को छोड़ आर्थिक शोषण के आधार पर प्रहार करके संघर्ष करने का रास्ता निकाला। आर्थिक शोषण के कारण जब कुछ मुट्ठी भर शोषकों को छोड़ जनता का सबसे अधिक भाग अपनी रोटी, जीविका और भविष्य की चिन्ता में चौबीसों घंटे परेशान रहता हो, तो वह संघर्ष भावुकतापूर्ण सोडे की बोतल की उफान की तरह क्षणिक नहीं हो सकता, उस संघर्ष की प्रत्येक असफलता उसके भावी वेग और शक्ति को बढ़ाने वाली तथा उससे शिक्षा लेने का अवसर देने वाली होती है।

('कार्ल मार्क्स' से) —राहुल सांकृत्यायन

www.vinoba.in

स्त्री-जाति के प्रति धर्म

भगवान् महावीर को वैराग्य हुआ। उन्होंने गृहस्थाश्रम छोड़कर विरक्त जीवन व्यतीत करने का विचार किया। माँ-बाप को यह पसंद नहीं आया, अतः पुत्र-धर्म को याद करके उन्होंने माँ-बाप के संतोष के लिए गृहस्थाश्रम छोड़ने का विचार स्थगित किया। माँ-बाप के स्वर्गवास के बाद घर छोड़ने को वे तैयार हुए; लेकिन बड़े भाई ने मना किया। बड़े भाई तो पिता-तुल्य होते हैं। उनको नाराज कैसे करें? उन्होंने और भी दो वर्ष गृहस्थाश्रम चलाया। बाद में घर छोड़ा।

भारतीय परम्परा की दृष्टि से यह ठीक ही हुआ। लेकिन आज का मानव पूछता है कि जिस व्यक्ति से आजीवन के लिए वचनबद्ध होकर उन्होंने गृहस्थाश्रम का प्रारंभ किया, उस व्यक्ति का क्या? माता-पिता के और भाई के भी संतोष का अगर महत्त्व है, तो पत्नी का संतोष, उसकी संमति का क्या कोई सवाल ही नहीं? क्या जीवदया और अहिंसा का कोई इस दिशा में तकाजा था ही नहीं?

* * *

बुद्ध भगवान् राजपुत्र थे। उन्होंने अपने लिए पत्नी भी स्वेच्छा से पसंद की थी। उनमें वैराग्य का उदय हुआ। इतने में उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उन्होंने उसका नाम रखा राहुल। राहुल के मानी होते हैं—झंझट या विघ्न। लेकिन क्या पिता के लिए यह योग्य था कि पुत्र का स्वागत वह 'राहुल' नाम से करे?

सिद्धार्थ ने गृहत्याग किया। काव्य कहता है कि पत्नी और बालक को सोते हुए छोड़ कर वे चोरी से भाग गये और दूर नदी के किनारे जाकर अपने सुन्दर बाल उन्होंने काट डाले।

इतिहास कहता है कि अपने पिता के और अन्य रिश्तेदारों के रोते हुए उन्होंने घर छोड़ा। महावीर ने अपने माँ-बाप के प्रति ऐसी कठोरता नहीं की। लेकिन बुद्ध ने अपनी पत्नी गोपा या यशोधरा की संमति नहीं ली। क्या उनका पत्नी के प्रति कोई धर्म था ही नहीं?

हमारा धर्मशास्त्र कहता है कि जीवन के पुरुषार्थ चार हैं: एक ओर धर्म, अर्थ और काम तथा दूसरी ओर मोक्ष। विवाह का बंधन धर्म, अर्थ और काम, तीनों तक सीमित है। जब मोक्ष पाने की इच्छा प्रबल होती है, तब सब बंधन आप ही आप टूट जाते हैं। उसे कोई भी सामाजिक बंधन बाँध नहीं सकता। जब पत्नी शादी करती है अथवा जब विवाह में कन्या का दान हो जाता है, तब वह अथवा उसके माता-पिता उसके साथ शादी करने वाले को धर्म-अर्थ-काम तक ही बाँध ले सकते हैं। मुमुक्षा पैदा होने पर पति उसे छोड़ जायगा।

यह खतरा वह जाने या न जाने, उसने मोल लिया ही है।

तब पत्नी को भी यही अधिकार होना चाहिए। जहाँ तक मैं जानता हूँ जैन-सम्प्रदाय में पत्नी को ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर पति को छोड़ देने का अधिकार है। सनातनियों में ऐसी न्यायोचित व्यवस्था कहीं दीख नहीं पड़ती।

जो हो; जहाँ तक माता-पिता और बड़े भाई की भावना या 'लागणी' का विचार है, वहाँ पत्नी की इच्छा-अनिच्छा का तनिक भी विचार न हो, यह समझ में नहीं आता।

* * *

विजय सेठ और विजया सेठानी के जीवन-प्रसंग में बात अलग थी। लड़का और लड़की, दोनों स्वभाव से विरक्त थे। दोनों शादी नहीं करना चाहते थे। तीनों तरफ से माता-पिता ने जबरदस्ती उन्हें विवाह-बद्ध किया। विवाह के बाद जब दोनों ने एक-दूसरे का विचार समझ लिया, तब उनको हुआ होगा कि अच्छा ही हुआ कि हम लोगों की इस तरह शादी हुई। दोनों ने तपस्या का मार्ग लिया और अपना उद्धार किया। यह सुन्दर हुआ। ऐसी आदर्श परिस्थिति हो, तब तो पूछना ही क्या!

* * *

श्री शंकराचार्य के सामने शादी का सवाल था नहीं, लेकिन विधवा माता को छोड़ कर संन्यास लेने का सवाल था। माता की संमति के बिना संन्यास कैसे ले सकते थे?(पत्नी होती, तो उसकी संमति के बिना संन्यास लेना, इतना कठिन नहीं था।)

कैसी परिस्थिति में श्री शंकराचार्य ने संन्यास लेने के लिए माता की संमति प्राप्त की, सो हम जानते हैं। उन्होंने संन्यास तो लिया, लेकिन माता के दुःख का कुछ इलाज उनको करना ही पड़ा। उन्होंने माता को वचन दिया कि संन्यास-धर्म के नियम का उल्लंघन करके भी वे माता की अंतिम सेवा के लिए उपस्थित होंगे। इस वचन का उन्होंने पालन करके सनातनी समाज की नाराज़गी मोल ली। वह सारा रोमहर्षण किस्सा कौन नहीं जानता?

महाराष्ट्र के ज्येष्ठ और श्रेष्ठ संत ज्ञानेश्वर के पिता का दृष्टांत भी यहाँ सोचने लायक है। विद्याध्ययन और तीर्थयात्रा पूरी करके उनके पिता ने श्वशुर की इच्छा के अनुसार कन्या का स्वीकार किया। कुछ दिन तक गृहस्थाश्रम चलाया। लेकिन बार-बार स्त्री को कहने लगे कि, "मुझे इस आश्रम में नहीं रहना है।" दुखिनी पत्नी ने जब देखा कि ये संन्यास लेने पर तुले ही हुए हैं, तब उसने उन्हें रोकना नामुनासिब समझा और जाने दिया। पति ने बनारस जाकर यह कह कर कि मैं अविवाहित हूँ, गुरु से संन्यास ले लिया। जब गुरु को पता चला कि इसने धोखे से संन्यास की दीक्षा ली है, उसे आज्ञा की कि संन्यास-आश्रम छोड़ कर फिर गृहस्थी करे। वैसा करने के बाद उन्हें चार अपत्य हुए। तीन लड़के और एक लड़की। आगे जाकर इन चार बालकों को और उनके माता-पिता को सनातन धर्म और सनातन समाज के हाथों क्या-क्या भुगतना पड़ा, सो सब जानते ही हैं!

आज की धर्मबुद्धि और न्यायबुद्धि पूछती है कि क्या धर्म की यह व्यवस्था ठीक है? सम्पूर्ण है? स्त्री के प्रति पति का शुद्ध धर्म क्या है?

* * *

गांधीजी ने एक रास्ता निकाला है। पति और पत्नी गृहस्थ-धर्म के पवित्र बंधन से बँध जाने के बाद अगर दो में से किसी एक को भी ब्रह्मचर्य का आदर्श जँच जाय, तो दूसरा व्यक्ति अपने साथी पर बलात्कार नहीं कर सकता। इसलिए दोनों संभोग की बात छोड़ कर गृहस्थाश्रम चलावें। एक-दूसरे को छोड़ जाने की आवश्यकता नहीं है। संयम के साथ, पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ एकत्र रह कर एक-दूसरे की मदद करते हुए समाज की सेवा सम्मिलित रूप से कर सकते हैं।

इसमें एक बात अवश्य है ही कि पति या पत्नी को ब्रह्मचर्य की बात मान्य न हो और पूर्ण गृहस्थाश्रम चलाने की इच्छा अनिवार्य हो, तो पुनर्विवाह करने की इजाजत होनी ही चाहिए और उसमें दोनों को एक-दूसरे की प्रसन्नता से मदद करनी चाहिए।

* * *

राम और लक्ष्मण जब १४ बरस के लिए वनवास गये, तब सीता ने राम के साथ रहने का अपना अधिकार आग्रहपूर्वक चलाया। लक्ष्मण की पत्नी 'उर्मिला' होते हुए भी उसकी कुछ न चली। कविवर रवीन्द्र ने अपने ढंग से इस अन्याय के बारे में शिकायत की है कि कवि ने उर्मिला के प्रति सहानुभूति तक नहीं बतायी। यह उपेक्षा अक्षम्य है।

व्यक्तिधर्म, पति-पत्नीधर्म और समाजधर्म को समझने वाले लोगों को चाहिए कि वे ऐसा कुछ रास्ता बतायें कि जिससे आज की धर्मबुद्धि को संतोष हो सके।

('मंगल प्रभात' से) —काका कालेलकर

भगवान् सूरज अगर छुट्टी लें!

हजारों साल तक अखंड काम करते रहने से भगवान् सूरज थक गये। कहने लगे कि कम-से-कम एक साल की छुट्टी लेकर विश्राम करने की आवश्यकता है! सबको बुला कर उन्होंने बतलाया कि "मैं एक साल की छुट्टी ले रहा हूँ। छुट्टी लेने का मुझे पूरा-पूरा हक है, क्योंकि मैंने आज तक एक बार भी छुट्टी नहीं ली। तो अब मेरा काम आप लोगों में से कौन उठा लेगा?"

भगवान् सूरज की बात सुन कर उल्लू को बड़ी खुशी हुई। उसने कहा—"यदि भगवान् सूरज छुट्टी लेते हैं, तो उस अवधि में मैं उनके काम का जिम्मा ले लूगा! कोई चिन्ता की बात नहीं। मुझसे बनेगी उतनी सेवा मैं अवश्य करूँगा।"

उल्लू का यह आश्वासन सुन कर सब जानवर कहने लगे—"क्या तुम संसार को प्रकाश दोगे? सब वृक्षों में फूल तथा फल पैदा करोगे? क्या तुम दुनिया को उष्णता दे सकोगे? सागर के पानी से भाप बनाकर वर्षा पैदा करोगे? तुम कर भी क्या सकोगे?"

यह सुनते ही शर्मिंदा होकर उल्लू ने मुँह छिपा लिया। वह भाग कर अँधेरे में छिप गया!

भगवान् सूरज का काम करने की जिम्मेदारी सम्हालने को कोई भी तैयार नहीं हुआ। तात्पर्य यह है कि महापुरुष अपने जीवन-कार्य से पल भर के लिए भी अलग नहीं हो सकते। उनका कार्य दूसरा कोई नहीं सम्हाल सकेगा।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

—शिवाजी भावे

---

www.vinoba.in

तमिलनाड़ की क्रान्ति-यात्रा से—

(महादेवी)

श्री शंकराचार्य के जन्मस्थान काळडी में सर्वोदय-सम्मेळन होने जा रहा है। चांडिल (बिहार) में रहते समय पू. बाबा ने श्री शंकराचार्य के कई ग्रंथों में से कुछ श्लोकों का चयन किया था। अब चार साल के बाद वह 'गुरुबोध' के नाम से प्रकट हो रहा है। विनोबाजी उस पुस्तक की प्रस्तावना में लिखते हैं :

"शंकराचार्य का बहुत बड़ा विचार-ऋण मेरे सिर पर है। देह-भावना से मुक्त होना ही ऋण-मुक्ति का उपाय है। वह प्रक्रिया सतत मेरी चालू है और ईश्वर-कृपा से वह पूर्ण हो जायगी, ऐसा विश्वास है। इस बीच सबको प्रसाद बाँट देना भी ऋण-मुक्ति का एक स्थूल उपाय हो सकता है। तदर्थ यह प्रयत्न किया है।

"अब हमारी तमिळनाड़ की भूदान-यात्रा पूरी हो रही है और केरळ प्रांत में प्रवेश हो रहा है। केरळ का काळडी ग्राम श्री शंकराचार्य का जन्म-स्थान है। वहाँ पर इस साळ सर्वोदय-सम्मेळन करने का तय हो गया है। यह एक भगवत्-कृपा का योग है, क्योंकि सम्मेळन हो सके तो कर्नाटक में हो, ऐसी इच्छा और प्रयत्न भी चलता था। एकदम ग्रामदान की चेतना का तमिळनाड़ में संचार होने के कारण तमिळनाड़ की यात्रा और भी बढ़ गयी और सम्मेळन केरळ में लेना पड़ा।

तीन साळ के पहले भगवान् बुद्ध की बोधगया में संमेळन करने का योग आया था और अब शंकराचार्य की जन्मभूमि में वह होने जा रहा है। वेदांत और अहिंसा के समन्वय की घोषणा हमने बोधगया में की थी, उस पर मानो यह ईश्वरी मान्यता का सिक्कामोर्तब होता है।

"३२ साळ के पूर्व वायकम-सत्याग्रह के निरीक्षण के लिए गांधीजी की आज्ञा से केरळ प्रांत में मेरा जाना हुआ था। उस समय काळडी निकट होने पर भी प्राप्त कार्यों से समय निकाळ कर वहाँ जाना उचित नहीं लगा था। उस समय की मेरी उत्कट भावना का चित्रण "गीता-प्रवचन" के बारहवें अध्याय में आया है। इतने साळ के बाद अब काळडी जाना होगा, वहाँ सर्वोदय-सम्मेळन होगा और प्रकाशन की योजनानुसार 'गुरुबोध' का प्रकाशन याने आचार्य-चरणों में समर्पण होना है। यह सब ईश्वर की लीला देखते हुए मन उनके चरणों में लीन हो जाता है और पिघळ जाता है। —द्वैताद्वैत विवर्जिते समरसे मौनं परं संमतम्।"

तमिळनाड़ की स्त्रियों में परदा वगैरह नहीं है। लेकिन कुछ जातियों में कई विचित्र रिवाज हैं! स्त्रियों के कान में खूब बड़ा गोळ छिद्र बनाते हैं—इतना बड़ा कि उसमें से मोटा-सा नीबू जा सके। चार-चार, पाँच-पाँच साळ की छोटी-छोटी लड़कियों के और एक तो आठ महीने की बच्ची के कान में भी भारी कड़े लटकाये थे! यह दृश्य मैंने बाबा को दिखाया। विनोबाजी ने स्त्रियों को समझाया : "भगवान् की इच्छा होती, तो क्या वह इस प्रकार कान में छिद्र नहीं बना सकता था? और इसलिए समझ लो कि यह ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध है। जैसा लड़का, वैसी ही लड़की। दोनों में फर्क क्यों होना चाहिए? आपको किसीने समझा दिया कि यह धर्म है और श्रद्धा से मान कर आपने यह किया, पर यह अधर्म है और एक गुलामी है।" फिर कहने लगे—"गाँव के लोगों का हृदय बहुत सरळ होता है। उन्हें ठीक मार्गदर्शन मिळना चाहिए। जब वे श्रद्धा के कारण अधर्म को ही धर्म समझ कर उसका अमळ करने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो उन्हें सच्चा धर्म समझने में भी क्या देर लगेगी?"

* * *

तुळसी-रामायण के पठन के समय का प्रसंग है : रामचंद्रजी वन जाने के लिए तैयार होकर कौसल्या माता से भावपूर्ण बिदाई लेते हैं। सीता माता भी रामचंद्रजी के साथ वन जाने के लिए उद्यत होती हैं। रामचंद्रजी गृहकृत्य, सास-ससुर की सेवा प्रधान बता कर और वन का भयानक दर्शन कराते हुए सीताजी को अपने साथ वन न आने को कहते हैं। फिर भी अपना कर्तव्य पति के साथ ही रहने का है, यह समझ कर वह वन जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रसंग को लेकर विनोबाजी ने कहा : "सीता अग्रगामी थी। भारत के असंख्य स्त्रियों में उसकी ज्योति जाग्रत है। लेकिन अब उत्तरप्रदेश और बिहार की ही क्या, हमारे सारे देश की कुल स्त्रियाँ किसी-न-किसी तरह गुलामी में फँसी हुई हैं। सीता का आदर्श और अग्रगामित्व, अगर हमारी स्त्रियों में लाना हो, तो उनको अदम्य पुरुषार्थ करना होगा, दूसरा कोई चारा नहीं।"

* * *

एक दिन रास्ते में सात गाँवों से होकर आये। छोटी-छोटी सात सभाएँ हुईं। पाँच बजे अंधेरे में लोग बाबा की प्रतीक्षा करते शांत बैठे थे। अगर शांत और कायदे से बैठे, तो बाबा बोलते हैं, नहीं तो आगे कूच कर देते हैं। ग्रामदान के सिवा दूसरे विषय पर बोलने की बाबा की प्रवृत्ति कम होती है। "सन् ५७ का साळ याने ग्रामदान की मुहिम है", ऐसा विनोबाजी कहते हैं।

आते समय एक भाई से 'कर्म-बंधन क्या चीज है', इस पर चर्चा हुई। विनोबाजी ने कहा : "घोड़े पर सवार होते हैं, उसकी लगाम अगर हाथ में रहा, तो ठीक रास्ते पर जा सकते हैं। नहीं तो घोड़ा हमको गिरा देगा। वैसा ही कर्म हमारे काबू में न रहा, तो हम बह जायेंगे। कर्म अच्छा हो, तो घोड़े के समान वह हमारा सहायक बन सकता है। बुरा काम तो जंगली जानवर समझो। वह हमारे उपयोग में नहीं आ सकता। अच्छे काम में भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। जैसे हम ग्रामदान माँग रहे हैं, यह है तो अच्छा काम, पर अगर ग्रामदान जल्दी या ज्यादा हासिल करने के खयाल से दबाव डालने लगें, तो वह दुष्कर्म बन जायगा।

बुरे कर्म के पश्चात्ताप की मर्यादा कहाँ तक है, इसका उत्तर देते समय विनोबाजीने कहा—"आगे वह बुरा कृत्य न हो, ऐसा संकल्प करके निभाया जाय, तो पश्चात्ताप का बोझ नहीं रहता।" ज्ञानी पुरुषों पर बुरे कृत्यों का असर नहीं होता, ऐसे वाक्य शास्त्रों में आते हैं। उसके बारे में उन्होंने कहा—"ऐसे वाक्य ज्ञानी पुरुष के गौरव के लिए कहे जाते हैं। वास्तव में ज्ञानी पुरुषों से बुरा कर्म होता ही नहीं। अगर हुआ-सा दिखे, तो परिस्थिति के कारण वैसा दिखता है।"

क्या विकारों के संयम को क्या हम मुक्ति कह सकते हैं? इस प्रश्न पर कहा—"नहीं, मन में विकार होते हुए भी उन्हें कृति में नहीं लाते, संयम कर लेते हैं। यह अच्छा तो है, पर इतने से मुक्ति नहीं हो सकती। जब किसी प्रकार का विकार चित्त में उठे ही नहीं और संयम की जरूरत ही न पड़े, चित्त आत्म-स्वरूप के समान परिशुद्ध और निर्मळ हो जाता है, तब मुक्ति की बात है।"

कभी-कभी गाँवों की बस्ती के बीच में रहना होता है, तो नींद ठीक नहीं मिळती। विनोबाजी कहते हैं, "एक-आध मील ज्यादा चलना हो, तो परवाह नहीं, लेकिन पड़ाव पर स्वच्छ हवा और रात को पूर्ण शांति होनी चाहिए।" एक रात बाबा को नींद ही नहीं आयी। कहने लगे—"कुत्तों के भूँकने के कारण आज मेरी नींद टूट गयी।" फिर कहा—"गाँव में कुत्ते भूँकते हैं, शहरों में रेडियो भूकता है! इन दोनों से हमें बचना चाहिए।"

तमिळनाड़ के धर्मग्रंथ "तिरुक्कुरळ" के बारे में चर्चा करते हुए एक भाई ने विनोबाजी से पूछा, "गीता और तिरुक्कुरळ, इन दोनों में श्रेष्ठ ग्रंथ कौनसा है?"

विनोबा ने कहा, "तिरुक्कुरळ में धर्म, अर्थ और काम; इन तीन पुरुषार्थों का विवेचन है। गीता चतुर्थ पुरुषार्थ की बात कहती है। उसके साथ साधन के तौर पर धर्म-चर्चा भी गीता में आती है। गीता में जितना कहा है, वह बहुत कुछ शाश्वत वस्तु है। तिरुक्कुरळ में शाश्वत वस्तु भी है, पर उसके साथ-साथ जो राज्य-शास्त्र की चर्चा आयी है, वह सारी की सारी सब जमाने के लिए नहीं है। जैसे राजा, उसकी सेना और सुरक्षा के लिए किला आदि बातें आगे के जमाने में काम की नहीं रहेंगी। राजा को तो हमने समाप्त ही किया है! सेना से मुक्ति पाने की हम बातें करते हैं और किले तो इन दिनों सुरक्षा के लिए बेकार ही हैं! फिर भी सत्य, प्रेम, करुणा और अहिंसा आदि जो बातें तिरुक्कुरळ में हैं, उसमें और गीता के शिक्षण में कोई फर्क नहीं है। हमें धर्म-ग्रंथों के विषय में श्रेष्ठ-कनिष्ठों की बातें नहीं करनी चाहिए, बल्कि सार वस्तु जहाँ से भी मिळे, वह ग्रहण करनी चाहिए। परिस्थिति के अनुसार ग्रंथ का जो अंश ग्राह्य न हो, वह विवेकपूर्वक छोड़ देना चाहिए।

तमिळनाड़ के तिरुमंगळम् तहसील के थिडियन गाँव में विनोबाजी एक बहुत बड़े पहाड़ पर चढ़े थे। गाँववालों को आह्वान किया था कि "तुम सब लोग एक हो जाओ, गाँव का एक परिवार बनाओ।" लोगों ने बाबा की यह बात बहुत ध्यानपूर्वक सुन ली थी। फलस्वरूप आज १८ अप्रैल को उस गाँव का ग्राम-दान हो गया है।

———

www.vinoba.in

समन्वय का संकेत : कालड़ी

[इस वर्ष का सर्वोदय-सम्मेलन कहाँ हो, यह फरवरी के अंत में ही तय हो पाया था । तब तक बराबर हमारे आपस में तथा पूज्य विनोबा से भी जो चर्चा चलती रही, उसका सार यही था कि सम्मेलन कर्नाटक में किसी स्थान पर होगा । बीच में कन्याकुमारी (तमिलनाड़) का सुझाव भी आया था। आखिरकार तय कालड़ी (केरल) का हुआ। कालड़ी आदि शंकराचार्य का जन्म-स्थान है। सन् १९५४ का सर्वोदय-सम्मेलन भगवान् बुद्ध की तपोभूमि और ज्ञानभूमि–बोधगया में हुआ था। ब्रह्मविद्या का आधार और जीवमात्र के लिए अहिंसा के विचार के समन्वय की प्रक्रिया हिन्दुस्तान में बराबर जारी रही है, जिसका जिक्र विनोबा के पत्र में है।

संयोग ऐसा हुआ कि सम्मेलन का स्थान तय होने के बाद आम चुनावों के फलस्वरूप केरल में साम्यवादी सरकार बनी। इस सरकार के शासन में केरल-राज्य में शायद पहली महत्त्वपूर्ण घटना है—विनोबा का अपनी पदयात्रा के सिलसिले में इस राज्य में प्रवेश और कालड़ी का आगामी सर्वोदय-सम्मेलन। क्या यह भी "साम्यवाद" और "साम्ययोग" के समन्वय का संकेत है?

हमारी क्रान्ति का हार्द कहाँ है, इसका संकेत भी पू० विनोबा ने नीचे दिए हुए उद्धरण के अन्त में दिया है। हमारा कुल काम श्रम-आधारित हो, यह क्रान्ति के लिए आवश्यक है। —सिद्धराज ढड्ढा]

"इस वर्ष कर्नाटक में ही सम्मेलन का हम सब लोग सोचते थे। लेकिन शंकराचार्य का जन्मस्थान ईश्वरी योजना में लिखित था, ऐसा दिखता है। बोधगया से कालड़ी समन्वय का एक संकेत है।"

* * *

"हाँ, अनेक प्रकार के समन्वयों की आशा इस वक्त हम कर सकते हैं। उन आशाओं को बल मिलेगा, जब सर्व-सेवा-संघ का कुल काम हम श्रम-आधारित कर सकेंगे और मेरा विश्वास है कि हम वह कर सकेंगे।"

(पत्रों से) —विनोबा

सर्व-सेवा-संघ, नयी-तालीम-विभाग

(१९५७-५८ की शिक्षण-व्यवस्था)

श्रम-भारती, खादीग्राम के शिक्षक तथा विद्यार्थी इस वर्ष के अंत तक भू-क्रांति के लिए बाहर निकल जाने के कारण श्रम-शाला (बुनियादी-वर्ग)की भर्ती दिसम्बर १९५७ तक स्थगित कर दी गयी है । जनवरी १९५८ से पुनः भर्ती जारी होगी। लेकिन उद्योग-शाला (उत्तर बुनियादी-वर्ग) की भर्ती हर साल की तरह इस साल भी मई १९५७ में जारी होगी । उद्योग-शाला का सत्र १ली जून से शुरू होता है । इसमें भर्ती होने वाले छात्रों की आयु १४ से १६ साल की होनी चाहिए। शैक्षणिक योग्यता मैट्रिकुलेशन के बराबर या बुनियादी-वर्ग उत्तीर्ण होना चाहिए। भर्ती के समय बौद्धिक क्षमता और शारीरिक शक्ति की जाँच कर ली जायगी। शिक्षण-शुल्क ६ रुपया मासिक लगता है । यह शुल्क छात्र के शरीर-श्रम से पैदा हो जायगा, ऐसी आशा है। इसके अलावा भोजन और निजी खर्च के लिए लगभग ३० रुपया मासिक की आवश्यकता होगी, जो अभिभावकों को देना होगा। दूसरे वर्ष से विद्यार्थियों में शिक्षण-शुल्क के अतिरिक्त १० से १२ रुपया माहवार कमाने की क्षमता हो जानी चाहिए, ताकि माता-पिता के खर्च का भार क्रमशः घटता जाय ।

उद्योग-शाला में कुल चार साल का अभ्यास-क्रम है: (१) प्रारम्भिक खेती, (२) गो-पालन, (३) वस्त्र-विद्या, (४) स्वास्थ्य-विज्ञान (सफाई, आहार, आरोग्य आदि), (५) समाज-सेवा; ये पाँच अनिवार्य विषय हैं । जीवन की इन मूल प्रवृत्तियों में निहित जितना विचार और ज्ञान है—जैसे समाज-शास्त्र, इतिहास, भूगोल, राजनीति, अर्थ-शास्त्र आदि, सामान्य-विज्ञान, गणित, भाषा और साहित्य यह सब दिया जाता है, शिक्षा का माध्यम राष्ट्र-भाषा हिन्दी है। आवेदन-पत्र भेजते समय विद्यार्थी को (१) नाम और पता (२) आयु (३) स्वास्थ्य और श्रम-शक्ति (४) शैक्षणिक योग्यता, लिखना आवश्यक है । आवेदन-पत्र २० मई १९५७ तक दफ्तर में पहुँच जाना चाहिए ।

प्रधान-केन्द्र—श्रम-भारती, —सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री,
पो० खादीग्राम, जि० मुंगेर (बिहार) अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,

नवम् सर्वोदय-सम्मेलन : सूचनाएँ

तमिलनाड़ (मद्रास प्रदेश) में लगभग एक वर्ष की पदयात्रा समाप्त करके आचार्य विनोबाजी ने गत ता० १८ अप्रैल को केरल में प्रवेश किया है। आगामी सर्वोदय-सम्मेलन के सिलसिले में वे तारीख ८ मई को सवेरे कालडी पहुँच रहे हैं। सम्मेलन तारीख ९ और १० मई को हो रहा है । उसके तुरन्त बाद दो दिन का एक भूदान कार्यकर्ता-शिविर भी कालडी में होगा।

रेलगाड़ियों की सुविधाएँ

सम्मेलन में आने वालों की सुविधा के लिए रेलवे की ओर से नीचे लिखी व्यवस्था की गयी है ।

(१) दो स्पेशल रेलगाड़ियाँ—एक ७ मई की रात को और दूसरी ८ को सुबह को मद्रास-सेन्ट्रल स्टेशन से अंगमाली के लिए रवाना होंगी। अंगमाली स्टेशन से कालड़ी के लिए बसें बराबर चलती हैं। वापसी यात्रा के लिए अगमाली से भी स्पेशल रेलगाड़ियाँ आवश्यकतानुसार छोड़ी जायेंगी। (२) 'मद्रास-कोचीन एक्सप्रेस' ट्रेन ७ मई से १३ मई तक अंगमाली स्टेशन पर ठहरेगी। (३) 'कोचीन-एक्सप्रेस' तथा कुछ अन्य रेलगाड़ियों में अतिरिक्त डिब्बे भी जोड़े जायेंगे ।

सम्मेलन में जाने वालों से प्रार्थना है कि वे स्पेशल रेलगाड़ियों और डिब्बों का पूरा लाभ उठावें। जहाँ तक हो सके उन्हींमें सफर करें, जिससे साधारण गाड़ियों में भीड़ न हो।

निवास-शुल्क भेजने के नये पते :

सुधार : (१) 'भूदान-यज्ञ' ता० १९–४ पृष्ठ १२ पर सर्वोदय-सम्मेलन-सूचनाओं में तमिलनाड़ : (५) सर्व-सेवा-संघ, गांधीनगर, त्रिचूर,' ऐसा छपा है—चाहिए : गांधीनगर, तिरुपुर (Tirupur)

(२) श्री व्यवस्थापक, अ. भा. सर्व-सेवा संघ, खादी-वस्त्रालय, बंगलोर
(३) मंत्री, पटना भूदान-यज्ञ-कमेटी, नेशनल हॉल, कदमकुआँ, पटना–३
(४) श्री मोतीलाल केजरीवाल, देवघर, दुमका (संथाल परगना)
(५) ठाकुरदास बंग, सर्वोदय-कार्यालय, नालवाड़ी, वर्धा (बंबई राज्य)
(६) श्री चंदू नाइक, सर्वोदय कार्यालय, यवतमाल (बंबई राज्य)
(७) मंत्री, मध्यप्रदेश-भूदान-यज्ञ-बोर्ड, नागपुर
(८) श्री व्यवस्थापक, प्रेम समाज, वालटेयर
(९) श्री मंत्री, खादी-कमीशन, विजयवाड़ा (आन्ध्र)
(१०) श्री संयोजक, भारत सेवक समाज, गुंटकल (आन्ध्र)

रेलवे-कन्सेशन-सर्टिफिकेट संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचना

रेलवे-कन्सेशन-सर्टिफिकेट पर वल्लभ स्वामी के नाम की रबर की मोहर लगी हुई है। रेलवे अधिकारी रबर की मोहर के हस्ताक्षर स्वीकार नहीं करते, इसलिए उनसे बातचीत करके यह व्यवस्था की गयी है कि जिन-जिन केन्द्रों से सर्टिफिकेट जारी किये जायँगे उन केन्द्रों के जिम्मेदार व्यक्ति सर्टिफिकेट पर हस्ताक्षर करेंगे। रेलवे बोर्ड की ओर से सब रेलवे अधिकारियों को यह सूचना भेज दी गयी है कि इस प्रकार हस्ताक्षरित सर्टिफिकेट स्वीकार कर लिये जाँय। जिन केन्द्रों से सर्टिफिकेट जारी किये जा रहे हैं, उन सबको भी सूचना कर दी गयी है कि वे सर्टिफिकेट पर हस्ताक्षर करके उसे जारी करें।

जो लोग इसके पहले कन्सेशन सर्टिफिकेट ले चुके हैं और जिन पर जारी करने वाले केन्द्र के जिम्मेदार व्यक्ति के हस्ताक्षर नहीं हैं, उन्हें कन्सेशन प्राप्त करने में कुछ असुविधा हो सकती है। अतः सर्टिफिकेट को रेलवे-अधिकारियों के पास भेजने के पहले केन्द्र वालों के हस्ताक्षर उस पर करा लेने चाहिये।

—सहमंत्री

छात्रों द्वारा पदयात्रा

बंबई के कुछ उत्साही छात्र-छात्राओं ने द्वारका सौराष्ट्र से भूदान-पदयात्रा ता.१५ जनवरी '५७ से प्रारंभ की। कलकत्ता तक जाने का संकल्प है। २६ मार्च को इस पत्रयात्रा टोली ने मध्यप्रदेश में प्रवेश किया। भोपाल, नरसिंहपुर, जबलपुर, शहडोल, अंबिकापुर आदि जिलों से टोली प्रचार करते हुए आगे बढ़ेगी। स्थानीय कार्यकर्ता, छात्र-छात्राएँ और जनता के सहयोग की अपेक्षा है।

२ अप्रैल तक की ६०० मील की पदयात्रा में करीब २०० बीघे से ज्यादा के भूदान-पत्र, १०००) के संपत्तिदान-पत्र मिले। साधनदान में १००९ अनाज, ७ हला, २७०) प्राप्त हुए। ५४ ग्राहक बने। ४००) की साहित्य-बिक्री हुई।

www.vinoba.in

लाइसेन्स नं. ए. ३४ रजिस्टर्ड नंबर ए. ३५४
(पहले से डाक-महसूल दिये बिना भेजने का परवाना प्राप्त)

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

लोकसेवकों से प्राप्त विवरण

मध्यप्रदेश :

(१) **श्री रामानन्द दुबे, श्री शालिग्राम शुक्ल, श्री महावीर श्रीवास्तव, रायपुर :** तहसीलों को क्षेत्रवार बाँट कर प्रत्येक क्षेत्र में भूमि-वितरण के शिविर कर रहे हैं। "भूदान-यज्ञ" के २३ ग्राहक बनाये। १००) की साहित्य-बिक्री की।

(२) **श्री मथुराप्रसद गौतम बरेही, रीवां :** पिछले ढाई मास में १० दाताओं द्वारा ३० एकड़ भूदान और वार्षिक ५०) का सम्पत्तिदान तथा ७ मन अनाज का दान मिला। ८५) की साहित्य-बिक्री हुई। १०५ एकड़ ज़मीन का वितरण हुआ।

(३) **श्री पंथराम मटंग, दुर्ग :** १० गाँवों की यात्रा में ८ एकड़ भूदान मिला।

(४) **श्री परशराम उमरे, बसकी, दुर्ग :** २४ गाँवों में भूदान का संदेश पहुँचाया। २१ दाताओं से १८ एकड़ भूदान मिला।

(५) **श्री जसवन्तराय खुराना, श्री सुखराम बल्ले, नरसिंहपुर :** ५ गाँवों का दौरा करके १६ ग्राहक बनाये और ४५) की साहित्य-बिक्री की।

(६) **श्री लक्ष्मीनारायण जैन, दमोह :** ५४ एकड़ भूदान मिला और १००) की साहित्य-बिक्री हुई।

(७) **श्री गं. उ. पाटणकर, बेतूल; श्री गौहाड, मोर्शी; देवीभाई, सेवाग्राम तथा पवार गुरुजी, करजगांव लोणी :** सत्याग्रही लोकसेवकों के चलते-फिरते तीन शिविर लिये। बेतूल ज़िले में खानी गांव ग्रामदान में मिला। ७७) की साहित्य-बिक्री हुई। ३० ग्राहक बने। घर-घर जाकर रोटी माँग कर सामूहिक भोजन करते रहे।

(८) **श्री गणेशप्रसाद नायक, जबलपुर; ठा० रामप्रसाद सिंह, जबलपुर; श्री बड़समुद्रकर, श्री शंकरदेव मानव, छिंदवाड़ा; श्री राजमोहनी देवी व श्री दूहनरामजी, सरगुजा :** सब भूमि-वितरण की पूर्वतैयारी करते रहे।

(९) **दीपचन्द्र जैन, रतलाम :** सर्वोदय-बीज-भण्डार की स्थापना की गयी। ११ दाताओं से अनाज का दान मिला।

उत्तरप्रदेश :

(१) **श्री कन्हैयाभाई, बनारस :** बनारस ज़िले के धौरहरा ग्राम में श्री धीरेन्द्रभाई मजूमदार की अध्यक्षता में ९ व १० अप्रैल को प्रथम ग्रामराज-सम्मेलन का आयोजन हुआ। श्री कपिलभाई और श्री राधाकृष्ण बजाज भी सम्मिलित हुए। ४ व्यक्तियों ने सन् ५७ के अन्त तक का सारा समय भूदान के लिए दिया।

(२) **श्री गौरीशंकर, लखीमपुर :** विचार-प्रचार का कार्य किया।

(३) **श्री राजनारायण त्रिपाठी, दुबेपुर, उन्नाव :** विचार-प्रचार किया ३ बीघा भूमि-वितरण और साहित्य-बिक्री की।

(४) **श्री जैरामभाई, गुदरिया, लखीमपुर :** ९७ मील की पदयात्रा की।

(५) **श्री लक्ष्मणप्रसाद अवस्थी, सीतापुर :** १८७ मील की पदयात्रा की।

(६) **श्री नारायण वाजपेयी, बाराबंकी :** २१३ गाँवों की यात्रा की। १०८ एकड़ भूमि का वितरण किया गया। ४९) की साहित्य-बिक्री हुई।

(७) **श्री चिमनलाल, आगरा :** स्वामी कृष्णस्वरूपजी के साथ यात्रा में रहे। ४ व्यक्तियों ने १९५७ के अन्त तक का समय देना तय किया। १०७०) का साधनदान, ९६ बीघा भूमि प्राप्त हुई। १४०) की साहित्य-बिक्री हुई। साधन-दान में ७० हल की लकड़ी, २० फावड़े और १५०) मिले।

(८) **श्री राजभूषण सिंह, कोरियो, इलाहाबाद :** ८ दाताओं द्वारा ६० बीघा भूमि, ३५) का साधनदान मिला। १० बीघा भूमि ६ परिवारों में वितरित की। २ व्यक्तियों ने जीवनदान और १ व्यक्ति ने समयदान देना तय किया।

(९) **श्री रघुराजसिंह, श्री हरिचन्द्र उपाध्याय, बहराइच :** करीब ५ एकड़ भूदान मिला। ४७ सेर अन्न दान मिला। करीब ७ एकड़ भूमि का वितरण हुआ।

(१०) **श्री यमुनाप्रसाद, फर्रुखाबाद :** फरवरी माह में १७७ मील की पदयात्रा की। ३०) सम्पत्तिदान प्राप्त हुआ। १०२) का साहित्य बिका। ग्राहक बनाये।

(११) **श्री प्यारेलाल, हापुड़, मेरठ :** १२ बीघा भूदान मिला, २० ग्राहक बनाये। ४००) का साहित्य बिका। (१२) **श्री शम्भुप्रसाद वर्मा, बाराबंकी :** ५९ मील की पदयात्रा कर साहित्य प्रचार किया। (१३) **श्री सरजूभाई, लोकसेवक, ग्राम-भतीजा, बनारस :** ३०) का सम्पत्तिदान मिला। (१४) **श्री रामपतिसिंह, श्री माताप्रसादजी, गोरखपुर :** गोरखपुर कमिश्नरी सघन-पदयात्रा का शिविर हरिहरपुर स्थान पर ४-५ अप्रैल को आयोजित किया। श्री कपिलभाई व श्री श्यामाचरण शास्त्री के भाषण हुए। "पावन प्रकाश" नाटक का अभिनय किया गया।

गुजरात में सामूहिक पदयात्राएँ और ग्रामदान

पालनपुर तहसील की सामूहिक पदयात्रा द्वारा ४५ गाँवों में भूदान-संदेश पहुँचाया गया। १११ बीघा भूदान मिला। ११० बीघा भूमि १३ परिवारों में वितरित की गयी। २३ संपत्तिदान, ११ साधन-दान-पत्र मिले। २८ ग्राहक बने। ८६) की साहित्य-बिक्री हुई। ३१ मार्च से १० अप्रैल तक करजण तहसील की सामूहिक पदयात्रा में ४४०) की साहित्य-बिक्री हुई। ता० २६ मार्च से ४ अप्रैल तक सौराष्ट्र के बगसरा क्षेत्र में सौराष्ट्र की प्रथम सामूहिक पदयात्रा द्वारा ७२ भाई-बहनों ने ८४ गाँवों में प्रचार किया। फलस्वरूप ४७७ बीघा भूदान मिला। संपत्तिदान भी काफी मिला। २०३५६) की साहित्य-बिक्री हुई।

श्री रविशंकर महाराज को बड़ोदा जिले की भूदान-यात्रा में ७०० बीघा भदान और ३ ग्रामदान मिले हैं। बड़ोदा जिले के ग्रामदानी गाँव खांडणीया को बंबई के भाई श्री अरविंदभाई शेठ ने 'दत्तक' लेकर उसके नवनिर्माण कार्य के लिए अपनी संपत्ति खर्च करने की जिम्मेदारी उठायी है, ऐसा रंगपुर आश्रम के श्री हरिवल्लभभाई परीख सूचित करते हैं। ग्रामदानी गाँव खडकीया तथा मातोरा का कुल रकबा १९०० बीघा है। गुजरात में अभी तक कुल १० गाँवों ने मालकियत का विसर्जन करके ग्रामदान जाहिर किया। ——

प्रकाशन-समाचार

ग्रामदान : विनोबा पृष्ठ १५०, मूल्य ॥=)

गांधी-युग की रोशनी में रामराज्य की ओर सबकी आँखें लगी हैं। प्रान्त-प्रान्त में ग्रामदान मिलते देख एकाएक लोगों में उत्साह की लहर दौड़ गयी है। आज भारतवासी ही नहीं, वरन् विदेशी भी इस स्वामित्व-विसर्जन के संकल्प को जिज्ञासा की दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी उत्कंठापूर्ति के हेतु विनोबाजी के प्रवचनों में से एतद्विषयक जानकारी एवं स्वयं ग्रामवासियों के अभिक्रम का महत्त्व और सरकार से सम्बन्धित की विवेचन संग्रहीत किया गया है। ग्रामों की प्राचीन परम्परा व आज उनके निर्माण पुनःसंगठन सम्बन्धी कल्पना भी परिशिष्ट के रूप में पाकर पाठकों के लिए पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी।

विनोबा संवाद : संकलन-व्योहार राजेन्द्रसिंह पृष्ठ ११२, मूल्य ।=)

विनोबाजी से जेल में धर्म, विज्ञान, जीवन दर्शन आदि नाना विषयों पर पूछे गये प्रश्नोत्तरों का संकलन उक्त पुस्तक में संजोया गया है। विनोबाजी के विचारों एवं उनके जीवन-दर्शन को जानने की दृष्टि से पुस्तक महत्त्वपूर्ण है।

—सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

श्री विनोबाजी की पदयात्रा का कार्यक्रम

अप्रैल माह : ता० २७–कोट्टारकारा, २८–अडूर, २९–एलांतूर, ३० चेंगान्नूर

मई माह : ता१–चेंगानचेरी, २–कोट्टयम्, ३–कल्लारा, ४ वैकम् ५ नादक्काऊ, ६–एर्नाकुलम्, ७–आलुवाय, ८ कालडी (संमेलन-स्थान)

ता. ८ से १२ तक कालडी में सर्वोदय-संमेलन के निमित्त मुकाम रहेगा। पदयात्रा के ये सभी पड़ाव मोटर-बस के मार्ग पर पड़ते हैं। कोट्टयम, वैकम् और आलुवाय रेलवे-स्टेशन भी हैं।

श्री विनोबाजी तथा वल्लभस्वामीजी का पता : C/o नवम् सर्वोदय-सम्मेलन, स्वागत-समिति, पो० कालडी KALADI (Dist. Trichur)

विषय-सूची

१. केरल को भूस्वामित्व मिटाने का आवाहन !	विनोबा	१
२. हमारी क्रांति के कुछ पहलू	सिद्धराज ढड्ढा	२
३. ईश्वर का राज्य बाहर हो नहीं-भीतर भी हो !	विनोबा	३
४. श्री जयप्रकाश बाबू की क्रांतियात्रा से–	धर्मवीर प्रसाद सिंह	४
५. "हमसे भी लिये जाओ !"	सुरेश राम	५
६. हृदय-क्षेत्र में राम-रावण का संघर्ष !	विनोबा	६
७. उत्तर-प्रदेश के भूदान-कार्यकर्ताओं से–	दादाभाई नाईक	६
८. संरक्षण और सर्वोदय : २.	——	७
९. साम्ययोग का एक विनम्र प्रयोग	ति. न. आत्रेय	७
१०. पंचामृत	——	८
११. तमिळनाड़ की क्रांतियात्रा से–	महादेवी	१०
१२. सर्वोदय-सम्मेलन-सूचनाएँ आदि	——	११
१३. भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण आदि	——	१२

सिद्धराज ढड्ढा सहमंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भागव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी

www.vinoba.in